UNIVERSAL LIBRARY

OU_186006

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 D61N Accession No. H3387

Author दीक्षित, प्रकाशनारायण

Title नाभादासकृत भक्तमाल : एक

This book should be returned on or before the date last marked below. सहायक 1961

नाभादास कृत भक्तमाल : एक अध्ययन

नाभादास कृत भक्तमाल

:

एक अध्ययन

प्रकाशनारायण दीक्षित

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : सन् १९६१ ईसवी

पाँच रुपया

मुद्रक
बिन्दाप्रसाद ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

कीरति भनति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

—गोस्वामी तुलसीदास

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहि पय परिहरि वारि विकार॥

—गोस्वामी तुलसीदास

भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद बंदन किये, नाशैं विघ्न अनेक॥

—नाभादास

अनुक्रम

प्रथम परिच्छेद

अध्ययन के सूत्र . . . १-८

द्वितीय परिच्छेद

नाभादास का युग; राजनीतिक स्थिति; सामाजिक परिस्थितियाँ; सांस्कृतिक परिस्थिति . . . ९-१९

तृतीय परिच्छेद

नाभादास का जीवन-चरित्र ; नाभादास का समय ; नाम ; जन्म-स्थान; माता-पिता ; गुरु ; जाति ; नाभादास जी के ग्रन्थ ; मृत्यु; नाभादास का व्यक्तित्व ; भक्तमाल की टीका २०-३७

चतुर्थ परिच्छेद

भक्तमाल का वर्ण्य-विषय, वर्ण्य विषय ; सत्ययुग, त्रेता, द्वापर के चरित्र.; कलियुग के चरित्र; अग्रदेव जी; स्वामी श्री शंकराचार्य पयहारी श्री कृष्णदास; नन्ददास जी, मीरांबाई, संत कवि, रैदास; कबीर; पीपा; धना . . . ३८-७२

पंचम परिच्छेद

इतिहास की कसौटी पर भक्तमाल के चरित्रों का मूल्यांकन; भक्तमाल के प्रमुख-चरित्र ७३-८३

षष्ठ परिच्छेद

हिन्दी में जीवन-चरित्र साहित्य का उद्भव और विकास ; हिन्दी जीवन साहित्य (पूर्वार्ध), हिन्दी जीवन साहित्य (उत्तरार्ध) ; भक्तमाल का मूल्यांकन ८४-१०७

सप्तम परिच्छेद

काव्य कला के दृष्टिकोण से भक्तमाल का मूल्यांकन; काव्य का उद्गम; काव्य क्या है; अभिव्यंजना शक्ति; कल्पना का उत्कर्ष; चरित्र-चित्रण की शक्ति १०८-३७

अष्टम परिच्छेद

भाषा १३८-४४

नवम परिच्छेद

नाभादास की प्रतीक योजना १५४-५८

दशम परिच्छेद

भक्तमाल की परम्परा; भक्तनामावली; भक्तमाल; भक्तमाल; हरिभक्ति प्रकाशिका; उत्तरार्ध भक्तमाल; अप्रकाशित भक्तमालों की सूची १५९-६६

उपसंहार १६७-६८

परिशिष्ट (क)

भक्तमाल के सम्बंध में कतिपय ज्ञातव्य तथ्य १६९

परिशिष्ट (ख)

चौबीस निष्ठाओं में विभक्त २६९ भक्तों की नामावली १७०-७५

परिशिष्ट (ग)

प्रियादास जी का परिचय १७६-७७

परिशिष्ट (घ)

सहायक पुस्तकें १७८-८१

नामानुक्रमणी १८२-८५

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तुलसीदास तथा नाभादास ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनका प्रभाव भारतीय जनता पर युगों तक रहेगा। जब तक भगवान राम का उज्वल चरित्र भारतीय जनता को सुख-दुःख में प्रेरणा देता रहेगा, तब तक तुलसीदास की वाणी के माध्यम से 'मंगल करनि कलिमल हरनि' रघुनाथ की कथा के जिस रामचरितमानस का सर्वत्र प्रचार रहेगा और जब तक 'राम ते अधिक राम कर दासा' का उच्चादर्श समाज को पुनीत एवं कल्याणकारी पथ प्रदर्शित करता रहेगा, तब तक नाभादास अविस्मरणीय बने रहेंगे। तुलसीदास ने श्रीराम के महान् चरित्र को शिक्षित एवं अशिक्षित जनता के लिए समान रूप से सुलभ बनाया, तो नाभादास ने राम के चरित्र को हृदयंगम करने वाले भक्तों को श्रद्धालु जनता के लिए सुलभ बनाया। तुलसीदास एवं नाभादास ऐसे सौभाग्यशाली कवि हैं जिनकी रचनाओं ने अनेकानेक टीकाकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके नयी परम्पराओं को जन्म दिया।

नाभादास कृत 'भक्तमाल' का विशेष महत्त्व तीन दृष्टिकोणों से है :

१. धर्म-साधना और साधकों का इतिहास प्रस्तुत करने की दृष्टि से।
२. साहित्य के अनेक कवियों के चरित्र को सुरक्षित रखने की दृष्टि से।
३. जीवनी-साहित्य की नवीन परम्परा स्थापित करने की दृष्टि से।

उपर्युक्त दृष्टियों से नाभादास की अमर और कल्याणकारी रचना का पृथक्-पृथक् तीन क्षेत्रों में महत्त्व है। इस प्रकार 'भक्तमाल' साधना और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से महत्त्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ के माध्यम से भक्तों का जीवन जितना उदात्त और समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया गया है, उतना ही वह साहित्य को विकास की दिशा में अग्रसर करने के लिए यह सहायक है। 'भक्तमाल' की परम्परा में प्रायः २०० ग्रन्थों की रचना हुई। नयी मान्यता, नयी परम्परा और जीवन के लिए नये-नये मानदंडों को स्थापित करने वाले इस ग्रन्थ की ओर

हिन्दी के इतिहासकारों ने सम्यक रूप से ध्यान नहीं दिया। हिन्दी के इतिहासकारों ने नाभादास के समकालीन मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदास, भक्त-प्रवर महाकवि सूरदास, प्रेम एवं विरह की अमर-गायिका मीरां, आचार्य केशवदास, संत कवि मलूकदास तथा सुन्दरदास, नीतिकार बीरबल, गंग एवं रहीम तथा अष्टछाप के अनेक कवियों की ओर ध्यान दिया है और उनके काव्य की विशेषताओं की विवेचना विस्तार के साथ की है। परन्तु भक्तों के चरित्र को प्रकाश और अमरत्व प्रदान करने वाले नाभादास की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। इतिहासकारों ने नाभादास के सम्बंध में जो कुछ लिखा है वह या तो अपर्याप्त है या अपूर्ण। प्रस्तुत रचना द्वारा इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत आलोचनात्मक अध्ययन दश परिच्छेदों में सम्पन्न हुआ है। प्रथम परिच्छेद 'अध्ययन के सूत्र' में नाभादास के सम्बंध में उपलब्ध सामग्री का परीक्षण और मूल्यांकन किया गया है। आचार्य शुक्ल जी, आचार्य मिश्रबन्धु, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० राम कुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने नाभादास जी के सम्बंध में जो कुछ सामग्री (साहित्य के इतिहासों में) दी है, उस पर यहाँ विचार किया गया है। इन विद्वानों द्वारा दिये गए संकेतों से लेखक को बड़ा लाभ हुआ है। इस परिच्छेद से लेखक के अध्ययन और परिश्रम का अनुमान किया जा सकता है।

द्वितीय परिच्छेद का शीर्षक है 'नाभादास का युग'। युग की परिस्थितियाँ व्यक्ति, लेखक और समाज को हर प्रकार से प्रभावित करती हैं। नाभादास अकबर के समकालीन थे। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने नाभादास और उनके मस्तिष्क को किस प्रकार प्रभावित किया यह प्रस्तुत परिच्छेद का प्रतिपाद्य है। प्रस्तुत परिच्छेद में परिस्थितियों का उल्लेख प्रकाशित इतिहासों तथा नाभादास के समकालीन कवियों की अप्रकाशित रचनाओं के आधार पर किया गया है। यह सर्वथा मौलिक प्रयास है।

तृतीय परिच्छेद है 'नाभादास की जीवनी और व्यक्तित्व'। नाभादास की जीवनी और व्यक्तित्व को वैज्ञानिक रूप से अंकित करने के लिए लेखक ने हर प्रकार की उपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया है। आलोच्य कवि की जीवनी पर इससे अधिक सामग्री का उल्लेख कहीं पर नहीं हुआ है। प्रस्तुत अध्याय लेखक के विस्तृत अध्ययन और परिश्रम का द्योतक है।

चतुर्थ परिच्छेद में 'भक्तमाल के वर्ण्य-विषय' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया

हैं। भक्तमाल का वर्ण्य-विषय सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग, दैवीचरित्र, मानवी चरित्र एवं इसी प्रकार के अन्य शीर्षकों में विभाजित कर लिया गया है। लेखक ने भक्तमाल के चरित्रों के विश्लेषण और विभाजन द्वारा इस अध्याय के वैज्ञानिक अध्ययन को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। यह परिच्छेद सर्वथा मौलिक प्रयास है।

पंचम परिच्छेद में 'इतिहास की कसौटी पर चरित्रों का मूल्यांकन' प्रस्तुत किया गया है। लेखक के परिश्रम और मौलिक प्रयास की दृष्टि से यह परिच्छेद विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इतिहास की कसौटी पर भक्तमाल के कतिपय पात्रों पर ही विचार किया जा सका है। सच यह है कि यह विषय स्वतः एक स्वतंत्र अध्ययन और अनुसंधान का विषय है। षष्ठ-परिच्छेद में जीवनी-शिल्प-विधान की दृष्टि से भक्तमाल का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। यह परिच्छेद लेखक के परिश्रम और जीवनी-साहित्य के सम्बंध में विस्तृत अध्ययन का सूचक है।

सप्तम परिच्छेद नाभादासकृत 'भक्तमाल का काव्य-कला की दृष्टि से मूल्यांकन' प्रस्तुत करता है। इस परिच्छेद में 'भक्तमाल' का अध्ययन भाव-प्रकाशन, अभिव्यंजना-शक्ति, कल्पना का उत्कर्ष, रस-परिपाक, चरित्र-चित्रण तथा रचना-शैली शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। परिच्छेद के प्रारम्भ में नाभादास के काव्यादर्श का विवेचन भी किया गया है। 'भक्तमाल' की काव्यगत विशेषताओं के सम्बंध में यह प्रयास पूर्णतया मौलिक है।

अष्टम परिच्छेद में 'नाभादासकृत भक्तमाल की भाषा' का आलोचनात्मक अध्ययन है। नाभादास के समकालीन तुलसीदास और सूरदास क्रमशः अवधी और ब्रजभाषा के महाकवि थे। इन कवियों ने जिस भाषादर्श से प्रभावित हो कर अवधी और ब्रजभाषा को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया उससे नाभादास का किंचित् भिन्न दृष्टिकोण था। प्रस्तुत परिच्छेद में नाभादास की भाषा पर लेखक ने अपना आलोचनात्मक मत सविस्तार प्रकट किया है। यह लेखक का सर्वथा प्रथम और मौलिक प्रयास है।

नवम परिच्छेद है 'नाभादास की प्रतीक योजना'। नाभादास प्रतीक योजना में बड़े कुशल थे। उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने प्रतीक योजना के पीछे नाभादास के मस्तिष्क और भावों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। प्रतीक योजना विषयक यह अध्याय पूर्णतया मौलिक है।

दशम परिच्छेद है 'भक्तमाल की परम्परा'। इस परिच्छेद में भक्तमाल की

पर परा का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। इस परिच्छेद की सामग्री अनुसंधान एवं मौलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना लखनऊ विश्व-विद्यालय की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा के प्रबन्ध के रूप में की गई है। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर डा० दीन दयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्० की महती कृपा एवं स्नेह-पूर्ण निर्देशन में इस ग्रन्थ की रचना हुई है। लेखक इस अवसर पर उनके चरणों में श्रद्धावनत होकर कृतज्ञता-ज्ञापन करता हुआ आशीर्वाद का अभिलाषी है।

डा० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डा० हीरालाल दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी०, डा० सरला शुक्ल तथा डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० की सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर लेखक इनके मूल्य को कम नहीं करना चाहता।

इस ग्रन्थ के लिए अपेक्षित बहुत-सी सामग्री आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी विश्वविद्यालय, श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर, श्री रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग विश्व-विद्यालय, श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी आदि की कृपा से उपलब्ध हुई है। लेखक इन सभी को हृदय से धन्यवाद देता है।

समय-समय पर इस ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहा है। आज से लग-भग दो वर्ष पूर्व इस ग्रंथ की रचना एम० ए० परीक्षा के प्रबन्ध रूप में हुई थी, किन्तु आज इसके कलेवर में कुछ वृद्धि हो गई है। कुछ समय पूर्व हिन्दी के एकाध विद्वानों ने नाभादास और नारायणदास को दो भिन्न व्यक्तित्व सिद्ध करने का प्रयास किया था। लेखक ने उसका भी यथास्थान समाधान प्रस्तुत किया है।

—प्रकाशनारायण दीक्षित

प्रथम परिच्छेद

अध्ययन के सूत्र

श्री नाभादास कृत 'भक्तमाल' हिन्दी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'भक्तमाल' हिन्दी साहित्य में 'रामचरितमानस' के पश्चात् अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। 'भक्तमाल' बडा ही लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। भक्त-मंडली में इस ग्रन्थ का सदैव से ही सम्मान किया गया है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि कई भक्तों द्वारा इसकी टीकाएँ हुई हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह एक ऐसा स्तम्भ है जिस पर हिन्दी साहित्य के विशाल भवन का निर्माण हुआ है। इतिहास के निर्माण सूत्रों में यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनेक आत्म-ख्याति में अरुचि रखने वाले भक्त कवियों की जीवनियों को प्रकाश में लाने का श्रेय 'भक्तमाल' को ही है। भक्तों की जीवनी के अतिरिक्त नाभादास ने भक्तों का संक्षेप में जीवन-दर्शन भी देने का प्रयत्न किया है। 'नाभादास' पूरे पारखी थे, वे भक्त को भक्त और भक्त कवि को कवि लिखने में सजग हैं। वस्तुतः नाभादास हिन्दी भाषा साहित्य के पहले समालोचक माने जाने चाहिए।[१]

'भक्तमाल' का महत्त्व दो दृष्टिकोणों से आँका जा सकता है। सर्वप्रथम इसे हम जीवन-चरित्र परिचयात्मक ग्रन्थ कह सकते हैं। दूसरे यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। 'भक्तमाल' के लिखने मे कवि नाभादास का उद्देश्य सम्भवतः यह था कि इसके द्वारा जनता में भक्तों के प्रति पूज्य भाव तथा आदर के भाव उत्पन्न किये जायें। इस उद्देश्य की पूर्ति भी इससे अच्छी हुई और जनता की श्रद्धा और भक्ति भक्तों के प्रति अधिक हो गयी।[२] कवि ने 'भक्तमाल' में समस्त भक्तों

---

१. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित निबन्ध।

२. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७

के प्रति अपने हृदय की श्रद्धा और भक्ति-श्रद्धांजलि रूप में अर्पित की है। "उसमें साम्प्रदायिक विभेद का परित्याग कर अनेक महात्माओं की जीवनी और कीर्ति की प्रशस्ति लिखी गयी है।" [१]

'भक्तमाल' की रचना उस समय हुई थी जब तुलसी जैसे महाकवि काव्य को केवल भगवान के गुणगान का माध्यम ही समझते थे। तुलसी ने 'मानस' में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा भी है कि सांसारिक मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वती भी सिर धुन-धुन कर पछताने लगती है। इसके अनन्तर महाकवि तुलसीदास ने महाकवि अथवा सच्चे कवि के गुणों पर भी प्रकाश डालते हुए कहा है कि चतुर कवि वही है जिसका हृदय समुद्र के समान है, बुद्धि सीप के समान और जो सरस्वती को स्वाति के समान मानते हैं। जब सरस्वती अच्छे विचार रूपी जल की वर्षा करती है तभी कविता रूपी सुन्दर मुक्तामणि को उसके द्वारा उत्पत्ति होती है :

"कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहि हरिजस कलमल हारी॥
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौ बरसइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकता मनि चारू॥" [२]

गोस्वामी तुलसीदास से लगभग १०० वर्ष पूर्व संतकाव्य-धारा के प्रवर्तक महात्मा कबीर दास ने भी इस बात का उपदेश किया था कि काव्य का उद्देश्य अथवा प्रयोजन भौतिक और विनाशशील तत्वों के गायन तक ही सीमित नहीं है। कबीर ने भी अनुभव द्वारा प्राप्त ब्रह्म विषयक ज्ञान के प्रसार और विस्तार का एक माध्यम विशेष काव्य को कहा है। कबीर ने ऐसा ही उपदेश करते हुए कहा है कि :

"जग भव का गावना का गावै।
अनुभव गावै सो अनुरागी है।" [३]

कबीर की परम्परा में अवतरित होने वाले संत कवि दरिया साहब ने काव्य

---

१. डा० श्याम सुन्दर दास : हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१४
२. रामचरितमानस, मूल गुटका २३वाँ संस्करण, पृ० ४२
३. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २१६

का प्रयोजन आध्यात्मिक साधना माना है। दरिया साहब ने काव्य को राम नाम के भजन का एक माध्यम घोषित किया है :

"सकल कबित का अर्थ है, सकल कबित की बात।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन रात ॥[1]

जिस देश में काव्य रचना की ऐसी परम्पराएँ प्रचलित रही हों, वहाँ पर 'भक्तमाल' जैसे ग्रन्थ का लिखा जाना, वास्तव में एक असाधारण घटना का ही परिचायक है। कारण स्पष्ट है। बड़े-बड़े कवियों ने काव्य को केवल भगवान के गुण गान का ही एक माध्यम उद्घोषित किया था। कवि नाभादास ने 'भक्तमाल' में न तो भगवान का ही केवल वर्णन किया है और न सामान्य मानव जाति का ही। उन्होंने भक्तों के चरित्रों का वर्णन कर, 'भक्तमाल' में अपने हृदय की श्रद्धा और आस्था को प्रकट किया है।

'भक्तमाल' में कवि ने भक्तों के जीवन चरित्रों के उन पक्षों का उद्घाटन किया है जिनसे उन भक्तों का महत्त्व सामान्य जनता के मध्य कुछ और अधिक बढ़ जाता है। साधारण रूप से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भक्तों का व्यक्तित्व, सामान्य वर्ग से अधिक उच्च होता है। संसार में रहते हुए भी वे निर्लिप्त रहते हैं, देह होते हुए भी उन्हें विदेह कहा जा सकता है। भक्तों का जीवन पवित्रता और आदर्शों की एक ऐसी जलती हुई ज्वाला है जिसमें अनेक कलुषित तत्त्व भी जल कर भस्म हो जाते हैं। इन भक्तों के चरित्रों को लिपिबद्ध करके, नाभादास ने अज्ञान के अन्धकार में निमग्न जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाया जिसमें आलोक के सिवाय और कुछ था ही नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास जी ने 'रामते अधिक राम के दास' को अधिक महत्त्व दिया था।

जीवनी लेखन की प्रणाली नाभादास जी से ही हिन्दी में प्रारम्भ होती-सी जान पड़ती है। जीवनी की कोई क्रमबद्ध परम्परा 'भक्तमाल' के पूर्व नहीं मिलती। इस दृष्टिकोण से कवि का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

'भक्तमाल' और नाभादास जी के सम्बंध में जो आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध है उसका विवरण निम्नलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. सरोज : शिवसिंह सेंगर

२. मिश्रबंधु विनोद : मिश्रबंधु

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २२८

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० रामचन्द्र शुक्ल
४. हिन्दी भाषा और साहित्य : डा० श्याम सुन्दर दास
५. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : अयोध्या सिंह उपाध्याय
६. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त
७. वाङ्मय विमर्श : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
८. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा
९. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन : डा० रामकुमार वर्मा
१०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० रामशंकर शुक्ल, 'रसाल'
११. कल्याण संत वाणी अंक
१२. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी
१३. रिलिजस सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज़ : एच० एच० विल्सन
१४. मिडिविएल मिस्टिसिज़्म : के० एम० सेन

उपर्युक्त सामग्री का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अनुशीलन कर लेना आवश्यक है। 'सरोज' हिन्दी का सर्वप्रथम इतिहास है। इसकी रचना जेष्ठ शुक्ल १२, संवत् १९३४ वि० में हुई थी। शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ 'सरोज' में नाभादास का परिचय बहुत संक्षेप में दिया है। सेंगर जी द्वारा लिखित परिचय केवल पाँच शब्दों में ही समाप्त हो जाता है। इसके अनन्तर इतिहासकार ने 'भक्तमाल' से ६ पंक्तियाँ उद्धृत करके नाभादास के काव्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'सरोज' में कवि ने नाभादास के विषय में इस ओर इंगित किया है कि कवि नाभादास अग्रदास जी के शिष्य थे। जिस छप्पय को इतिहासकार ने 'सरोज' में रखा है, उससे इस तथ्य का स्पष्ट आभास हो जाता है कि नाभादास जी ने अनेक देवताओं और भक्तों की कीर्ति का गुणगान किया था। कवि ने भगवान के भक्तों का यश वर्णन भी बड़ी सतर्कता से किया है। 'सरोज' में नाभादास के संबंध में लिखा है कि :

३६५ नाभादास कवि, अग्रदास जी के शिष्य (भक्तमाल) छप्पै

"संकर, सुक सनकादिक, कपिल नारद, हनुमाना।
विषकसेन, प्रहलाद, बलिदरु, भीषम जग जाना॥
अर्जुन, ध्रुव, अंबरीष, विभीषन, महिमा भारी।
अनुरागी, अक्रूर सदा ऊधव अधिकारी॥

भगवत्त भक्त अवसिष्ठ की, कीरति कहत सुजान है।
हरि प्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान हैं॥"[1]

इसके आधार पर न तो नाभादास का भली प्रकार परिचय ही मिल पाता है और न काव्य-कौशल का ठीक-ठीक अनुमान ही लगाया जा सकता है।

'सरोज' के पश्चात् नाभादास जी के सम्बंध में सविस्तार परिचय और विवरण देने का कार्य 'मिश्रबंधु विनोद' में सम्पन्न हुआ।[2] विद्वान लेखकों ने लगभग चार पृष्ठों में नाभादास और प्रियादास का परिचय दिया है। मिश्रबंधु पहले इतिहास-कार हैं जिन्होंने नाभादास के उपेक्षित व्यक्तित्व के प्रति इतना ध्यान दिया है। मिश्रबंधु निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डालते हैं :

(क) नाभादास के गुरु का नाम
(ख) नाभादास का समय
(ग) भक्तमाल की रचना-तिथि
(घ) नाभादास की जाति
(च) नाभादास का निधन काल
(छ) नाभादास एक भक्त के रूप में
(ज) नाभादास एक कवि के रूप में
(झ) नाभादास के अन्य ग्रन्थों का परिचय
(ट) नाभादास का महत्त्व

उपर्लिखित इन विषयों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाभा-दास के सम्बंध में मिश्रबंधु ने जो कुछ सामग्री दी है वह हिन्दी में सर्वथा मौलिक और नवीन है। इतने विस्तार के साथ नाभादास का आलोचनात्मक अध्ययन हिन्दी में सम्भवतः इससे पूर्व नहीं हुआ था। नाभादास के व्यक्तित्व और रचनाओं के सम्बंध में 'मिश्रबंधु विनोद' से हमें पर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि 'विनोद' के बाद में लिखे जाने वाले इतिहासों में इन्हीं बातों (नाभादास के गुरु का नाम, समय, भक्तमाल की रचना-तिथि, नाभादास की जाति, नाभादास के ग्रन्थ आदि) की पुनरावृत्ति हुई है।

'मिश्रबंधु विनोद' के अनन्तर शुक्ल जी लिखित 'हिन्दी साहित्य का

---

१. शिवसिंह सेंगर : सरोज, सातवाँ संस्करण, पृ० १७१
२. मिश्रबन्धु विनोद, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३५७-६१

इतिहास' इस दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है। नाभादास के सम्बंध में जिन जिन बातों का उल्लेख मिश्रबंधु ने 'मिश्रबंधु विनोद' में किया था, उन्हीं बातों का उल्लेख आचार्य शुक्ल जी ने बहुत ही संक्षेप में अपने इस ग्रन्थ में कर दिया है। इसके साथ ही साथ शुक्ल जी ने एक कथा का भी उल्लेख किया है जिससे नाभादास एवं तुलसीदास के मिलन का भी प्रमाण मिलता है।[१] परन्तु यदि भली-भाँति देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी मिश्रबंधु से आगे नहीं बढ़ पाये।

डा० श्यामसुन्दर दास ने नाभादास का परिचय दो अवतरणों में अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में दिया है। पहले अवतरण में रामभक्ति की परम्परा में नाभादास का स्थान निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। इसी अवतरण में प्रियादास की टीका और प्रियादास के समय का उल्लेख हुआ है। दूसरे अवतरण में नाभादास की जाति, समय, तुलसीदास से भेंट, गुरु और उनकी काव्य-भाषा का विवरण दिया गया है।[२]

डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा उल्लिखित सामग्री का नवीनता और मौलिकता के दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं है। कारण कि इन सब बातों का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख मिश्रबन्धु और आचार्य शुक्ल बहुत पूर्व ही कर चुके थे।

'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' ग्रन्थ में हरिऔध ने प्रायः दो पृष्ठों में नाभादास का परिचय दिया है। इस परिचय में जीवनी और व्यक्तित्व की ओर कम ध्यान दिया गया है। नाभादास की काव्य-भाषा और शब्दावली के सम्बंध में पर्याप्त विवेचन हुआ है। सम्भवतः नाभादास की भाषा के सम्बंध में इतने विस्तार के साथ पहली बार ही विचार किया गया है।[३]

'अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय' में डा० दीनदयालु गुप्त ने नाभादास और उनके भक्तमाल के सम्बंध में बड़े विस्तार के साथ विचार किया है। यह विवेचन लगभग ग्यारह पृष्ठों में सम्पन्न हुआ है। परन्तु 'भक्तमाल' का अध्ययन यहाँ पर अष्टछाप के कवियों की दृष्टि से किया गया है। नाभादास का परिचय देते हुए 'भक्तमाल' की रचना का समय, विद्वान लेखक ने संवत् १६८० निर्धारित किया है। इसके अतिरिक्त आलोचक ने प्राय आठ पृष्ठों में 'भक्तमाल' की टीकाओं

---

१. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
२. डा० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१४
३. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३४-३६

की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों की जीवनी की विवेचना प्रस्तुत की है।[१]

'वाङ्मय विमर्श' में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने नाभादास के युग, आविर्भाव काल, भक्तमाल के वर्ण्य-विषय, भक्तमाल की भाषा, नाभादास की काव्य-शक्ति और उनकी गुरु-परम्परा का उल्लेख सूत्ररूप में किया है। आचार्य मिश्र हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार और आलोचक हैं। 'वाङ्मय विमर्श' में नाभादास की जीवनी और कृतित्व पर प्रकाश डालना लेखक का अभीष्ट नहीं था। हिन्दी साहित्य के विकास और इतिहास का विवरण देते हुए विद्वान आलोचक ने संक्षेप में नाभादास के सम्बंध मे यहाँ पर सभी आवश्यक बातों का उल्लेख कर दिया है। वाङ्मय विमर्श की सामग्री के आधार पर नाभादास के महत्त्व का आभास पाठक को हर प्रकार से मिल जाता है और यही विद्वान् लेखक का प्रयोजन था।[२]

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डा० रामकुमार वर्मा ने नाभादास के सम्बंध में जो कुछ सामग्री दी है वह पर्याप्त नही है। इसमें लेखक ने केवल जाति, समय और अग्रदास के शिष्यत्व का उल्लेख किया है। यह सूचना हमें 'मिश्रबन्धु विनोद' से पूर्व ही उपलब्ध हो चुकी है। नाभादास के अध्ययन के सम्बंध में इस ग्रन्थ से हमारा मार्ग-निर्देशन नहीं हो पाता।[३] आलोचनात्मक इतिहास की परम्परा में डा० वर्मा का दूसरा ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन'[४] है। इस ग्रन्थ में उन्ही बातों का पिष्टपेषण है।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में डा० रसाल ने नाभादास के समय, प्रियादास की टीका, तुलसीदास और नाभादास की भेंट, का उल्लेख किया है। अन्त में रसाल जी ने नाभादास के ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है। यह सामग्री नाभादास के अध्ययन के विकास मे अधिक सहायक नहीं है। इस पिष्टपेषण से हमारी जिज्ञासा शान्त नही होती है।[५]

कल्याण के 'संतवाणी' अंक में नाभादास के सम्बंध में जो कुछ दिया गया है वह परम्परागत है। परन्तु दो बाते ऐसी है जिनका उल्लेख हमें हिन्दी में पहली बार मिला है। पहली बात यह है कि नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९-२८
२. वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२-२७३
३. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६७७
४. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८
५. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८

ने किया था और दूसरी बात यह है कि नाभादास का जन्मस्थान तैलंग-देश राम-भद्राचल के पास है।[1] *यद्यपि यहाँ पर नाभादास का परिचय बहुत संक्षेप में दिया* गया है, तथापि नवीन सूचनाओं के कारण इसका अपना महत्त्व है।

'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' के लेखक श्री परशुराम चतुर्वेदी ने नाभादास की रचना का उपयोग अपने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में अनेक बार किया है। परन्तु स्थान-स्थान पर 'भक्तमाल' की प्रशंसा करके आलोचक आगे बढ़ जाता है। सम्भवतः इसलिए कि नाभादास निर्गण कवियों की गणना से परे हैं।

एच० एच० विल्सन महोदय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिलिजस सेक्ट्स ऑफ़ हिन्दूज' के प्रारम्भ मे लिखा है कि भक्तमाल की रचना अब से (सन् १८६२ ई०) प्रायः २५० वर्ष पूर्व हुई थी और 'भक्तमाल' ऐसे कवियों के जीवन चरित्र और परिचय की अच्छी सूची है।[2] 'भक्तमाल' पर सबसे पहली टीका संवत् १७६९ में हुई थी। यह टीका भक्तमाल के रचे जाने के १०० वर्ष बाद हुई थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 'भक्तमाल' की रचना संवत् १६६९ में हुई थी[3] (सन् १६११)। विद्वान लेखक ने यह टीक ही कहा है कि अब से (१८६२ ई०) २५० वर्ष पूर्व 'भक्तमाल' की रचना हुई थी। कारण यह है कि प्रियादास की टीका के आधार पर भी भक्तमाल का रचना काल (सन् १६११) रहा होगा। नाभादास का यह अध्ययन अपूर्ण लगता है।

'मिडीवियल मिस्टिसिज्म' में क्षितिमोहन सेन महोदय ने नाभादास का परिचय देते हुए तीन बातों का उल्लेख किया है। उनमे से पहली बात यह है कि नाभादास का आविर्भाव १६वी शताब्दी में हुआ। दूसरी बात यह है कि नाभादास अनाथ थे। अन्त मे नाभादास 'भक्तमाल' के रचयिता थे। इस विवरण से हमें कोई नवीन सूचना नही प्राप्त होती और न अध्ययन को बल मिलता है।[4]

इस प्रकार नाभादास के सम्बंध में शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, डा० दीनदयालु गुप्त, हरिऔध जी तथा सम्पादक 'संत वाणी' अंक 'कल्याण' ने जो सूचनाएँ दी हैं, वे सभी महत्त्वपूर्ण हैं। उनके द्वारा नाभादास के सम्बंध में हम कुछ रूपरेखा निर्धारित कर सकते हैं।

---

१. कल्याण 'संत वाणी' अंक, पृ० २७५

२. H. H. Wilson: Religious Sects of Hindus

३. मिश्रबन्धु: मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ३७५

४. के० एम० सेन: मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५

द्वितीय परिच्छेद

नाभादास का युग

मनुष्य सामाजिक प्राणी है।[1] अतः समाज मनुष्य के द्वारा तथा मनुष्य सामाजिक वातावरण और परिस्थितियों से क्षण-प्रतिक्षण प्रभावित हुआ करता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रभावित होकर, समाज पर अपने कृत्यों द्वारा कुछ ऐसी अमिट छाप छोड़ देता है जो किसी विशेष महत्त्व का द्योतन करती है। जिस प्रकार साहित्य और समाज के सम्बंध में किसी प्रकार का व्यवधान नही डाला जा सकता, उसी प्रकार साहित्यकार और समाज के सम्बंध पर किसी प्रकार का सदेह नही किया जा सकता।

किसी स्थान के रहने वाले मनुष्यों पर उस देश, समाज एवं समय का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वातावरण और परिस्थितियों से मानव, जीवन-पर्यन्त जकड़ा रहता है। वातावरण के प्रभाव से अछूता रहना मनुष्य के लिए अत्यन्त कठिन है। मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र सत्ता लेकर उत्पन्न होता है, किन्तु प्रत्येक पग पर वह बंधनों से जकड़ा हुआ है।[2]

समय-समय पर महान् आत्माओं का उदय हुआ करता है और ऐसी महान् आत्माएँ परिस्थितियों की दिशा बदल कर, वातावरण को प्रभावित कर, समाज पर कुछ ऐसे अमिट चिन्ह छोड़ जाया करती है, जिन्हें इतिहास सँभाल कर भविष्य के लिए रख छोड़ता है। भारत के धार्मिक इतिहास में इस प्रकार की अनेक महान् आत्माओं का उदय हुआ और प्रकृति के नियमानुसार उन्हें कालकवलित होना पड़ा। भारत का धार्मिक इतिहास इस तथ्य का ज्वलंत

---

१. **इस वाक्य का प्रतिपादक अरस्तू था**--Man is a social animal.

२. **वाल्टेयर**: Man is born free but every where he is in chains.

प्रमाण है कि उसने असंख्य देवतुल्य आत्माओं को जन्म दिया। इन्हीं कुछ भक्त आत्माओं में से हमारा आलोच्य कवि नाभादास भी था। भक्त नाभादास के नवनीत सदृश्य हृदय में भक्ति की धारा बहाने का श्रेय उनके गुरु अग्रदास जी को है। नाभादास ने भगवान के स्वरूप भक्तों के चरित्रों का प्रणयन किया। नाभादास स्वयं एक बहुत बड़े भक्त थे और भक्तिरस-सुधा को जनता में प्रवाहित करना चाहते थे। नाभादास के 'भक्तमाल' में वर्णित चरित्रों से ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाते, केवल भक्तों का परिचय मात्र ही मिल पाता है। इसका प्रमुख कारण यह जान पड़ता है कि कवि ने भक्तों के चरित्रों का वर्णन जनहिताय तथा स्वांतःसुखाय के दृष्टिकोण से किया था।

कवि के युग की परिस्थितियों की जानकारी के दो प्रमुख माध्यम, अन्तःसाक्ष्य और बहिर्साक्ष्य हैं, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में अन्तःसाक्ष्य मूक ही हैं। नाभादास के समय के विषय में अधिक प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं हो पायी। नाभादास के समय और समकालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले सूत्रों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं उनके समकालीन कुछ कवि जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं गोस्वामी तुलसीदास और सयुरादास। सयूरादास प्रसिद्ध संत कवि मलूकदास के प्रमुख शिष्य, नाभादास के समकालीन और 'मलूक परिचयी' के लेखक थे। इनकी 'मलूक परिचयी' में अपने समय की परिस्थितियों की ओर किंचित् प्रकाश डाला गया है। इसके अनन्तर नाभादास के समय पर प्रकाश डालने वाले कुछ इतिहासकार भी हैं। उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं एच० एच० विल्सन, डा० ग्रियर्सन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, डा० रसाल, डा० वर्मा, डा० दीनदयालु गुप्त आदि।

सामान्य रूप से नाभादास का समय संवत् १६४२ से १७०० तक माना जाता है। यदि यह मान लिया जाय कि सम्पूर्ण 'भक्तमाल' का प्रणयन नाभादास द्वारा ही हुआ तो उनका समय सं० १७१५ के बाद तक चलता है।[1] नाभादास जी ने लगभग ६० वर्ष का पवित्र तथा निष्कलंक जीवन व्यतीत किया था। नाभादास का आविर्भाव उस समय हुआ जब भारत पर मुगल-सम्राट अकबर का राज्यकाल चल रहा था और अकबर के रूप में मुगल साम्राज्य का दीपक हिन्दुओं के स्निग्ध तेल से जगमगा रहा था। शाहजहाँ के राज्यकाल

---

१. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, सम्मेलन पत्रिका, भाग ३५, संख्या ७ ९, पृ० १२९

में उनका महाप्रस्थान हुआ। उन्होंने अपने जीवन में तीन श्रेष्ठ मुगल बादशाहों का राज्यकाल देखा था अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ। निश्चय ही यह समय भारतीय संस्कृति, चित्रकारी, वास्तुकला और स्थापत्यकला के विकास की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था।

राजनीतिक स्थिति

नाभादास का प्रादुर्भावकाल १५वीं सदी का अंत और १६वीं सदी का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार नाभादास जी के समय लोदीवंश का शासनकाल समाप्त हो रहा था और भारतीय राजनीति के रंगमंच पर मुगल-शासक पदार्पण कर रहे थे। इतिहास के अनुसार सन् १५२६ ई०[1] में बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया और सन् १५२६ से लेकर १५३० तक दिल्ली का राज-शासन किया। उसके बाद हुमायूँ का, और सन् १५५६-१६०५ अकबर का राज्य काल रहा। इन पठानों और मुगलों के शासनकाल की अशांतिपूर्ण स्थिति और राजनीति के बनते-बिगड़ते रूप को नाभादास ने अपनी आँखों देखा और श्रुत अनुभव प्राप्त किया। नाभादास के समय अनेकानेक राजनीतिक और राजकीय परिवर्तन हुए थे। राज्यसत्ता को प्राप्त करने के लिए और पारस्परिक संघर्ष में रक्तपात कर देना, उस युग की विशेषता थी। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[2] अकबर के पूर्ववर्ती बादशाहों के अव्यवस्थित, अनुशासन रहित, अनियमित अहंमन्यता से संचारित और अस्त-व्यस्त राज्यशासन के फलस्वरूप भारतीय जनता अत्यधिक कष्ट में थी और अधिकार-लिप्सा, सत्ता-प्रेमी राजाओं की वासनाओं की होली में झुलसी जा रही थी। रामराज्य की सुन्दर कल्पना करने वाले तुलसीदास को इन शासकों की क्रूरता, हिंसा भावना और अनियमित शासन बहुत खटकता था। उनकी निम्नलिखित

---

१. **स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ० ११**

२. Moreland: "On the other hand, a very small fault, or a trifling mistake, may bring a man to the depths of misery or to the scaffold and consequently everything is uncertain, wealth, position, love, friendship, confidence, everything hangs by thread. Nothing is permanent: Jahangir's India, p. 55.

पंक्तियों से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है :

"गोंड, गँवार नृपाल कलि यवन महा महिपाल ।
साम, न दाम, न भेद अब, केवल दंड कराल ।।

सथुरादास ने तुलसीदास की भाँति इन शासकों की बर्बरता का उल्लेख नहीं किया, परन्तु उन्होंने परिचयी मे अकबर की नीति[१] और देश की दशा का संक्षेप में उल्लेख किया है । सथुरादास का कथन है :

"तीस बरस तक अकबर रहा ।
तिन साधुन सो कछु न कहा ।"[२]

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती है । सबसे पहली बात यह है कि तीस वर्ष के राज्यकाल में अकबर ने हिन्दू जनता के धार्मिक जीवन में किंचित् भी हस्तक्षेप नही किया तथा इस नीति के परिणामस्वरूप देश में शांति और धार्मिक स्वातत्र्य रहा । सथुरादास के इस कथन का समर्थन इतिहासकार भी करते हैं । अकबर अपनी धार्मिक नीति में अपनी हिन्दू रानियों से अधिक प्रभावित था । उसके अन्तःपुर में हिन्दू रानियाँ मूर्तिपूजा, व्रत तथा दान आदि स्वतंत्रतापूर्वक करती थीं ।[३] इसका जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । उसके उपासना-गृह में प्रत्येक धर्म पर स्वतंत्रतापूर्वक मत प्रकट किये जाते थे ।[४] अपने पूर्वजों द्वारा जजिया[५], तीर्थयात्रा कर[६] तथा देवालयों के निर्माण के विरुद्ध लगाये हुए प्रतिबंधों को अकबर ने हटा दिया था ।[७] अकबर की सारग्राहिता तथा उदारता का एक और भी उल्लेखनीय उदाहरण है । अकबर ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों, अथर्ववेद, महाभारत, रामायण आदि का फ़ारसी में अनुवाद भी कराया था ।[८] अकबर

---

१. सथुरादास सुन्दरदास के समकालीन थे । कई ग्रन्थों की रचना की जो अभी अप्रकाशित हैं ।
२. परिचयी, पृ० १६
३. अकबरनामा, भाग २, पृ० १५९
४. श्रीराम शर्मा : दी रिलीजस पालिसी ऑफ मुगल एम्परर्स, पृ० १९
५. अकबरनामा, पृ० २०३-२०४
६. श्रीराम शर्मा : दी रिलीजस पालिसी ऑफ मुगल एम्परर्स, पृ० २३
७. Du Jarric, p. 75
८. दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० २५

ने अपने राज्य में शुद्धि की आज्ञा दे दी थी ।[१] अकबर ने सन् १५६२ ई० में युद्ध बंदियों को मुसलमान बनाने के पूर्व प्रचलित प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया था ।[२] गो बध की भी उसने मनाही कर दी थी ।[३] उसने हिन्दुओं को ऊँचे-ऊँचे पद दिये[४] और हिन्दुओं को अपने धार्मिक पर्वों और त्योहारों के स्वतंत्रतापूर्वक मनाने की आज्ञा दी ।[५] अकबर हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दी भाषा का प्रेमी था और साथ ही साथ सम्मान भी करता था । बीरबल, गंग आदि जैसे हिन्दी के नीतिकार कवि उसके दरबार में उच्च नौकरियों में नियुक्त थे । अकबर ने सर्वप्रथम हिन्दी-फ़ारसी कोष 'पारसीक प्रकाश' की रचना करवायी थी ।[६]

अकबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जहाँगीर राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुआ । इसके शासन के समय तक भारतीय जनता के हृदय पर अकबर की उदारता के चिह्न शेष रह गए थे । सथुरादास ने 'परिचयी' में जहाँगीर की धार्मिक नीति के विषय मे इस प्रकार उल्लेख किया है :

"तिनके पीछे भा जहँगीरा ।
करता अदल हरै सब पीरा ॥[७]

आज के इतिहासकार भी सथुरादास के कथन से सहमत हैं । जहाँगीर मुसलमानों के साथ पक्षपात का व्यवहार करता था ।[८] वह हिन्दुत्व की अपेक्षा इस्लाम में अधिक रुचि रखता था । धर्म के ग्रहण और परित्याग के विषय में वह उदार न था ।[९] जो लोग इस्लाम को ग्रहण कर लेते थे उन्हें राज्यकोष से आर्थिक

---

१. बदायूनी : मुन्तखिब उल तवारीख, भाग २, पृ० ३९१
२. अकबरनामा, भाग २, पृ० १५९
३. मुन्तखिब उल तवारीख, भाग २, पृ० २६१, ३०३
४. दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० २६-२७
५. मुन्तखिब उल तवारीख, पृ० ३०६
६. देशदूत, ४ फरवरी, १९४४
७. परिचयी, पृ० १६
८. He was characterized as being less favourably inclined to Hindus Religious Policy of Mougha Emperors, p. 70
९. Ibid

सहायता भी दी जाती थी।[१] इसके अतिरिक्त जहाँगीर अन्य विषयों पर उदार ही बना रहा।[२] युद्ध के अवसरों पर उसने कई बार हिन्दुओं के मंदिरों को नष्ट भी करवाया।[३] वह हिन्दू यात्रियों के प्रति उदारता का बर्ताव करता था।[४] उसके शासनकाल में हिन्दू अपने पर्व और त्योहारों को पूर्ववत ही मनाते थे।[५] जहाँगीर की नीति अकबर की अपेक्षा संकुचित थी।[६]

जहाँगीर के पश्चात् उसका पुत्र शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा। सथुरादास ने 'परिचयी' में शाहजहाँ के विषय में भी उल्लेख किया है :

"शाहजहाँ तिनके सुत राजा।
तिन फिर बहुत गरीब नेवाजा॥"[७]

शाहजहाँ गरीबों पर दया दृष्टि रखता था। इन पंक्तियों में 'फिर' शब्द इस तथ्य का द्योतन करता है कि जहाँगीर की अपेक्षा शाहजहाँ अधिक उदार न था, किन्तु फिर भी वह गरीबों पर दया करता था।

अकबर धार्मिक मामलों मे उदार था। जहाँगीर इन विषयों की ओर से उदासीन तथा विमुख रहा करता था किन्तु शाहजहाँ एक कट्टर मुसलमान के रूप में हमारे सम्मुख आता है। यद्यपि शाहजहाँ एक राजपूत नारी का पुत्र था, किन्तु उसमें मातृ-पक्ष के स्वाभाविक गुणों का लेशमात्र भी प्रभाव न दृष्टिगत होता था।[८] सन् १६३५ ई० में शाहजहाँ ने अपने को इस्लाम के विरुद्ध चलने वालों

---

१. The memories of the Asiatic Society of Bengal, Part V, p. 154.

२. V. A. Smith : Oxford History of India, p. 397

३. Jahangir R. & S B. pp 154–155, 114–15.

४. The Religious Policy of Moughal Emperors, p.74

५. Ibid, p.82, 83

६. Ibid, p. 90

७. परिचयी, पृ० १६

८. If Akbar was liberal in his religious views and Jahangir indifferent to mere question of theology, Shahjahan was an orthodox Muslim. Although born to a Rajput mother to a father whose mother was also a

का विनाशकारी घोषित किया ।[1] उसने राज्य के ऊँचे-ऊँचे पद मुसलमानों को दिये और हिन्दू तीर्थ यात्रियों पर कर लगा दिया ।[2] सन् १६३२ ई० में उसने मंदिरों का बनवाना अवैधानिक घोषित कर दिया ।[3] मुसलमानों के अत्याचार धीरे-धीरे हिन्दुओं पर बढ़ने लगे । शाहजहाँ ने जुझारसिंह तथा उसके परिवार वालों को मुसलमान बनवा लिया[4] और हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न कर दियें ।[5]

शाहजहाँ अपने पूर्वजों की अपेक्षा इस्लाम धर्म में अधिक विश्वास करता था तथा उसका कट्टर पक्षपाती भी था । परन्तु उसके उत्पीड़न का व्यापक प्रभाव न पड़ा । इसी कारण सथुरादास ने उसकी नीति का विस्तारपूर्वक विवरण न देकर संक्षेप में 'बहुत गरीब नेवाजा' ही कह दिया । यह उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण है ।

सामाजिक परिस्थितियाँ

नाभादास के समय सामाजिक सगठन जैसा कुछ था उससे व्यावहारिक रीति भिन्न थी । समाज, वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच का भेद-भाव, और इसी प्रकार की विषमताओं से युक्त था । आश्रमव्यवस्था नहीं थी लेकिन समाज में योगियों, साधु-सन्यासियों के प्रति सम्मान का भाव था । पारिवारिक जीवन में देखावे की मर्यादा बधन के रूप में प्रचलित थी परन्तु उसका आंतरिक स्फुरण विलीन हो चुका था । समाज में स्त्री अपनी स्वच्छंदता और अधिकार को खोकर बंधन और भय से पराभूत थी । बहुविवाह प्रथा राजदरबारों, मंसबदारों और मध्यवर्ग की शोभा समझी जाती थी । उदात्त सामाजिक और देश-उन्नति की भाव-

---

Rajput princess. Shahjahan does not seem to have much influenced by these factors. The Religious Policy of Moughal Emperors, p. 94

१. The Religious Policy of Moughal Emperors, p. 96–97

२. The Religious Policy of Moughal Emperors, p.92

३. Dr. Smith : Oxford History of India, p. 421

४. Dr. Banarsi Prasad : History of Shahjahan, pp. 89-90.

५. Dr. Banarasi Pd : History of Shahjahan, p. 89

नाओं के स्थान पर विलासिता, कामुकता, ईर्षा-द्वेष और वैमनस्य का बोल बाला था। सरकारी कर्मचारी 'कनक' और 'कामिनी' में रँगे हुए थे।[1]

समाज में मुसलमानों का बोलबाला था। उन्हीं की सेवा करने वाले हिन्दुओं और बादशाह के कृपापात्रों के अतिरिक्त अधिकार जनित जनता का जीवन निर्धनता और अभावों से ग्रस्त था, हिन्दू जनता महत्त्वाकांक्षा हीन और जीवन से उदासीन थी। अकबर का शासनकाल कुछ अंशों में समाज के लिए सुखमय था। लेकिन दरिद्रता, आचरण-हीनता और आत्म-विश्वास का अभाव उस समय की जनता में भी कम नहीं था। अकबर के शासन-काल में अनेक दुर्भिक्ष पड़े जिनमें सन् १५५६ और १५७३ के दुरभिक्ष बड़े बड़े भीषण और व्यापक थे। बदायूनी[2] और 'तुजुक-ए-जहाँगीर'[3] से इनकी भीषणता का अनुमान लगाया जा सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की इस दुर्भिक्षावस्था, सामाजिक व्यवस्था और चतुर्दिक व्याप्त विपत्तियों का उल्लेख 'कवितावली' में कई स्थलों पर किया है। इन छंदों में देश की यथार्थ स्थिति साकार हो उठी है और समाज का हीन स्वरूप अपने-आप हमारे मस्तिष्क को आतंकित करने लगता है। मज़दूर, कृषकों का समूह, बनिये, भिक्षुक, नौकर, चंचल नट, चोर, बाजीगर, आदि सभी पेट भरने के लिए ही पढ़ते हैं और पेट भरने तक ही अपने को सीमित रखते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि पेट के लिए लोग अनेक ऊँच और नीच कर्म में प्रवृत्त रहा करते हैं। यहाँ तक कि पेट-पूजा के दृष्टिकोण को ही सम्मुख रख कर बेटा और बेटी तक को बेच डालते हैं। पेट की ज्वाला बड़वाग्नि से भी भयंकर हुआ करती है।

---

१. "The Governors are usually bribed by the thieves to remain inactive for avarice dominates manly honour, and instead of maintaining troops, they fell and aborn their mahals with beautiful women and seem to have the pleasure house of the whole world within their walls"–Moreland's Translation of Jahangir's India.

२. तारीख रेंकिंग का अनुवाद, पृ० ५४९-५१

३. तुजुक-ए-जहाँगीरी, पृ० ३३०-४०

"किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन बन, अहन अखेटकी ।
ऊँचे, नीचे करम, धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी ।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की" ॥[१]

कहने का अभिप्राय यह है कि उस युग की साधारण जनता में केवल एक दृष्टिकोण को रखकर ही समस्त कार्य सम्पन्न किये जाते थे और वह था पेट का प्रश्न ।

उक्त समय में सामाजिक ढाँचे में उच्छृंखलता का साम्राज्य अपना विस्तार पा रहा था । प्राचीन आदर्श और परम्पराएँ धीरे-धीरे विलीन होती जा रही थीं । सामान्य वर्ग में लोगों की स्थिति अधिक संतोषजनक न थी । लोगों के पास धन का अभाव था । जीविका-विहीन दुःखी थे। दरिद्रता का तांडवनृत्य चल रहा था । संक्षेप में समाज अनेक अभिशापों से ग्रस्त था--

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका-बिहीन लोग सीधमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी" ।
बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी ।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु ।
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥"[२]

कुछ अन्य पंक्तियों में तुलसी ने कलिकाल का बड़ा ही सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है। उसे एक निरंकुश राजा का स्वरूप कवि ने दिया है जिसके शासन का ध्येय केवल विनाश ही है, सृजन नहीं ।

सामाजिक संगठन के आधार पर जनता के कुछ वर्ग विशेष हुआ करते हैं। वर्ग-विहीन समाज कभी सुचारु रूप से अपने गंतव्य की ओर नहीं पहुँच सकता

---

१. तुलसीदास, कवितावली : पृ० १७३-७४
२. तुलसीदास : कवितावली, पृ० १७४

है । समाज के प्रारम्भिक स्वरूप से भी इस बात की पुष्टि होती है । हमारे देश में चार वर्णों की जो योजना सामाजिक संगठन में की गयी थी वह सम्भवतः इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर कि सामाजिक प्रयोजनों में किसी प्रकार का व्यवधान आकर उपस्थित न हो जाय ।

मुगल युग में जनता में तीन प्रमुख श्रेणियाँ थी । प्रथम श्रेणी में वे लोग आते थे जो मंसबदार तथा उच्चपदाधिकारी होते थे, द्वितीय श्रेणी में मध्य वर्ग के लोग आते थे तथा तृतीय में मजदूर वर्ग आता था जो अपने परिश्रम द्वारा जीविका अर्जित करते थे । उच्च श्रेणी के लोगों मे उस समय के छोटे-छोटे राजा सम्मिलित थे । मांस, मदिरा, तथा कामिनी उनके प्रति दिन के जीवन के आवश्यक तत्व थे, इन्ही मे वे सदा लिप्त रहा करते थे । किन्तु यही तक उनका जीवन सीमित न था, वे अधिक-से-अधिक धन व्यय करते तथा भोग-विलास का जीवन व्यतीत करने के आदी बन गए थे । सर्वत्र यही प्रवृत्ति उच्च कर्मचारियों में विद्यमान थी ।[१] इस वर्ग के लोग विदेशी वस्तुओं का अधिक उपयोग करते थे । इसके पाश्चात् मध्य वर्ग आता है । इसी मध्य वर्ग में छोटी-मोटी नौकरी-पेशे के लोग भी आते हैं । इन लोगों का जीवन सुखमय था । कारण कि ये कर्मचारी यदा-कदा लोगों से घूस आदि भी ले लिया करते थे ।[२] तीसरे वर्ग के लोगों की दशा अधिक सुखमय न थी । उनकी आय उनको जीविका के लिए पर्याप्त न होती थी । उनके वस्त्रादि भी बहुत ही साधारण हुआ करते थे । किन्तु अकबर के राज्यकाल में इस वर्ग के लोग भी सुखी थे । इनकी अवनति अकबर के बाद से प्रारम्भ हो गयी थी । जहाँगीर के राज्यकाल[3] में मज़दूरों की दशा अच्छी न थी । उन्हे उनके श्रम के अनुसार वेतन नहीं दिया जाता था । लोगों को दिन भर में एक बार ही भोजन उपलब्ध हो पाता था । इस श्रेणी की जनता का रहन-सहन भी निम्न स्तर का था ।

सांस्कृतिक परिस्थिति

अकबर के शासनकाल में देश की सांस्कृतिक परिस्थिति अच्छी थी । इस

---

१. Dr. Ishwari Prasad : A Short History of Muslim Rule in India, p. 449

२. Ibid, p. 650

३. "The workmen were not paid adequate wages according to the labour....." Ibid

समय देश बराबर उन्नति की दिशा में अग्रसर हो रहा था। शिक्षा का प्रचार बढ़ता जा रहा था। कलाकारों का सम्राट स्वयं आदर करता था तथा उन्हें राज्य की ओर से हर तरह की सुविधा प्रदान की जाती थी। अकबर की इस उदारता से प्रेरित होकर धनिकवर्ग भी कवियों, शिल्पकारों को आश्रय देता था और उन्हे द्रव्य देकर प्रोत्साहित करता था। जहाँगीर के समय में गाँवों में भी शिक्षा का प्रसार था। शाहजहाँ के काल में लाहौर में अनेक स्कूल थे।[१] काश्मीर शाहजहाँ के काल में शिक्षा तथा विद्वानों का केन्द्र हो रहा था। अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ सभी समान रूप से कला तथा कलाकारों के प्रेमी थे। शाहजहाँ के युग में कला अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गयी थी। वास्तुकला भी उन्नति कर रही थी। देश धन-धान्य से पूर्ण था।[२]

मुसलमानों के शासनकाल में जो बर्ताव एक मुसलमान का मुसलमान के साथ होता था, वह हिन्दू के साथ नहीं था। मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं ने अपने हिन्दुत्व को नहीं भुलाया। इसके सर्वप्रथम अगुवा हुए थे गोस्वामी तुलसीदास जी। उन्होने अपनी भक्तिसुधा धारा से हिन्दुओं के भग्न होते हुए हृदयों को अभिसिंचित किया। इन भक्तों का (सूर, तुलसी) जनता के हृदय पर बड़ा स्वस्थ प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय है हमारे आलोच्य कवि नाभादास को जिन्होंने इन समस्त भक्तों के, जीवन के आदर्श पक्षों का उद्घाटन अपनी 'भक्तमाल' में करके हमारी श्रद्धा को और अधिक सहारा दिया।

---

१. मनूची, भाग २, पृ० ४२४

२. टैवर्नियर। फ्रेञ्च इतिहासकार के अनुसार

तृतीय परिच्छेद

नाभादास का जीवन-चरित्र

नाभादास हिन्दी के सर्वप्रथम जीवनी-लेखक कहे जा सकते हैं। इस बात का नाभादास को भारी श्रेय है कि उन्होंने लगभग दो सौ भक्तों के जीवन-चरित्रों को लिपिबद्ध करके विस्मृति के गर्भ में विनष्ट होने से बचा लिया। धार्मिक साधना और साहित्य-साधना के क्षेत्र में नाभादास का व्यक्तित्व, इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि उनके टीकाकारों और उनकी परम्परा में अवतरित होने वाले अन्य कवियों ने उनकी जीवनी को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया। जिस व्यक्ति ने अपनी साधना और लगन से इतने भक्तों को प्रकाश दिया, वह स्वतः भारतीय जनता की उदारता का पात्र न बन सका। फलतः उसकी जीवनी रहस्य बन कर रह गई।

नाभादास की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले व्यक्तियों में कुछ उनके समकालीन हैं और कुछ वर्तमान इतिहासकार। उनके समकालीन लेखकों में निम्नलिखित संत कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं :

१. संत कवि बोधेदास[१]
२. संत कवि जनगोपाल[२]
३. संत कवि रामरूप[३]
४. संत कवि खेमदास[४]
५. संत कवि रघुनाथदास[५]

---

१. जगजीवन साहब की परिचयी (अप्रकाशित)
२. दादू जन्म लीला परिचयी
३. गुरु भक्त प्रकाश (अप्रकाशित)
४. गोपीचन्द चरित परिचयी (अप्रकाशित)
५. स्वामी हरिदास की परिचयी (अप्रकाशित)

६. संतकवि रूप दास[1]
७. संतकवि अनन्तदास[2]
८. संतकवि सथुरादास[3]
९. प्रियादास[4]

प्रियादास का आविर्भाव नाभादास से लगभग १०० वर्ष बाद हुआ था। वर्तमान इतिहासकारों में एच० एच० विल्सन, क्षितिमोहन सेन, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु, रामचन्द्र शुक्ल, राधाकृष्ण दास, हरिऔध, डा० रामकुमार वर्मा, डा० रसाल, परशुराम चतुर्वेदी तथा सम्पादक संतवाणी अंक कल्याण है। उपर्युक्त प्राचीन लेखकों में से बोधेदास, जनगोपाल, रामरूप, खेमदास, रघुनाथदास, रूपदास, अनन्तदास और सथुरादास ने नाभादास का परिचय विस्तार के साथ नही दिया है। इन्होंने नाभादास के गुरु, माता-पिता, जन्मस्थान, सन्-संवत् आदि का भी उल्लेख नही किया है। इन कवियों ने भक्तों की परम्परा में नाभादास का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। इनकी दृष्टि में नाभादास का भक्त रूप उनके लौकिक चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्त्व का था। इस प्रकार इनके द्वारा प्रस्तुत की हुई जीवन सामग्री से हमें यही ज्ञात होता है कि नाभादास अपने समय के परम भक्त और साधक थे। ये सत्संग-प्रेमी थे और साधु-समाज में इनका मान था।

'भक्तमाल' की अनेक टीकाएँ हुईं। इसकी सबसे प्राचीन टीका प्रियादास जी द्वारा लिखित है। इसकी रचना संवत् १७६९ में हुई थी। प्रियादास जी ने इस टीका की रचना 'भक्तमाल' की रचना के प्रायः १०० वर्ष बाद की थी। आश्चर्य का विषय है कि इन टीकाकारों ने भी नाभादास के सम्बंध में कुछ भी नहीं लिखा और जो लिखा भी है, वह बहुत ही अपर्याप्त है। 'भक्तमाल' की टीका में प्रियादास ने नाभादास के विषय में कहा है कि—

(७) श्री नाभाजू का वर्णन—

---

१. स्वामी सेवादास की परिचयी (अप्रकाशित)
२. त्रिलोचन, नामदेव, धना, रंका, बंका, रैदास एवं पीपा साहब की पृथक्-पृथक् परिचयी (अप्रकाशित)
३. मलूकदास की परिचयी
४. भक्तमाल के प्रथम टीकाकार

"जाको जो स्वरूप सों अनूप लै दिखाय दियो
कियो यों कवित्त पट मिहीं मध्य लाल है ।
गुण पै अपार साधु कहें आँक चारिही में,
अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है ।
सुनि संत सभा झूमि रही अलि श्रेणी मानौ,
घूमि रही, कहें यह कहा धौं रसाल है ।
सुने हे अगर अब जानें मैं अगर सही,
चोवा भये नाभा, सों सुगन्ध भक्तमाल है ॥"[१]

तिलक

जिस संत का जैसा स्वरूप है, श्री नाभा जी स्वामी ने उनको अपने अनूठे काव्य में वैसा ही अनूप दिखा दिया है और कविताई ऐसी की है कि जिसका अर्थ ऐसा झलकता है कि जैसे बहुत झीने वस्त्र के बाहर से उसके भीतर का लालमणि (रत्न) झलकता है । संतों के अपार गुणों को श्री नाभा जी ने थोड़े ही अक्षरों में यों कहा है कि उनमें अर्थ अनोखे विस्तृत भरे हैं, जैसे बड़े-बड़े कविवरों में चमत्कृत रीति होती ही है । संतों की सभाएँ इस 'भक्तमाल' काव्य को सुन के भ्रमर-वृन्दों की भाँति मँडराती तथा झूमती रहती हैं और यह कहती हैं कि, "यह कैसा आश्चर्य रसमय रसाल है" । मैंने 'अगर' जी का नाम सुना तो था परन्तु अब ठीक जान भी लिया कि आप वस्तुतः 'अगर' है, जिनसे 'नाभा'[२] रूप 'चोआ' हुए कि जिन नाभा 'नाफा'[३] का भक्तमाल ऐसा सुगंध फैल रहा है ॥"

उपर्युक्त विवरण से नाभादास के विषय में दो महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी होती है । पहली यह है कि नाभादास जी कवियों, भक्तों के स्वरूप-वर्णन में बड़े सचेत थे । भक्तों के स्वरूपों का नाभादास ने 'भक्तमाल' में ज्यों का त्यों विवरण दे दिया है, अपनी ओर से कुछ घटा बढ़ी नहीं की । दूसरी बात यह है कि नाभादास कवि थे ।

नाभादास का समय

नाभादास जी का अस्तित्वकाल बड़े विवाद का विषय है । इसका प्रमुख

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका, (सम्पादित रूपकला द्वारा)
२. नाभा जी 'नभोभूज' का अपभ्रंश है
३. नाफा करनरी वाला

कारण यह है कि कोई भी ऐसा अन्तस्साक्ष्य नहीं मिलता जिसके आधार पर नाभादास के अस्तित्वकाल के विषय में कुछ कहा जा सके। कुछ किंवदंतियों, और वहिर्साक्ष्य के आधार पर नाभादास का समय विद्वानों ने निश्चित करने का प्रयास किया है। वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों ने नाभादास के समय के विषय मे अपने ग्रन्थों में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। वे प्रमुख विद्वान् निम्नलिखित है :

मिश्रबंधु[१], डा० श्यामसुन्दरदास[२], राधाकृष्ण दास[३], रामचन्द्र[४], डा० रसाल[५], डा० दीनदयालु गुप्त[६], हरिऔध जी,[७], आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[८], सम्पादक सतवाणी अक कल्याण[९], क्षिति मोहन सेन[१०], एच० एच० विल्सन[११]।

उपर्युक्त विद्वानो में मिश्रबन्धु ने नाभादास की मृत्यु तिथि का ही अनुमान किया है। डा० श्याम सुन्दरदास ने सवत् १६४२-१६८० तक का समय नाभादास जी का माना है। राधाकृष्ण दास[१२] ने नाभादास का स्थितिकाल १७६९ सं० माना है। रामचन्द्र शुक्ल ने नाभादास और तुलसी की मिलन कथा तथा समय का उल्लेख किया है। डा० रसाल ने भी इन्ही दो रहस्यो पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। डा० दीन दयालु गुप्त ने नाभादास को अष्टछाप के कवियों

---

१. मिश्रबंधु-विनोद
२. हिन्दी भाषा और साहित्य
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
४. सम्पादक राधाकृष्ण दास ध्रुवदास-कृत भक्त नामावली, भूमिका
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८
६. अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय
७. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ३३४
८. वाङमय विमर्श, पृ० २७२-७३
९. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५
१०. मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५
११. H. H. Wilson : Essays and Lectures chiefly on the Religion of Hindus.
१२. सम्पादक राधाकृष्ण दास : ध्रुवदास-कृत भक्तनामावली। पृ० ९०-९१

का समकालीन माना है। हरिऔध जी १७वीं शताब्दी समय निश्चित करते हैं। संतवाणी अंक, कल्याण के सम्पादक ने वि० सं० १६५७ के लगभग नाभादास का समय माना है। क्षितिमोहन सेन १६वीं शताब्दी को नाभादास जी का समय बतलाते है। एच० एच० विल्सन नाभादास को मलूकदास का समकालीन उद्घोषित करते हैं। अब इन विद्वानों के मतों का परीक्षण कर लेना उपयुक्त होगा।

'मिश्रबंधु-विनोद' में लेखक ने नाभादास के जन्म अथवा समय का कोई विवरण नही दिया है, केवल इतना ही संकेत किया है कि नाभादास का शरीरांत संवत् १७०० के लगभग हुआ होगा। नाभादास के शरीरांत का यह संवत् लेखक ने राधाकृष्ण दास के द्वारा दिये गए संवतों के आधार पर ही निश्चित किया है। यह संवत् १७०० केवल अनुमानित ही है, इसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए मिश्रबन्धुओं के पास कोई पुष्ट प्रमाण नही है। इसके अतिरिक्त लेखक ने यह भी बताया है कि नाभादास और तुलसीदास का मिलन भी हुआ था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास तुलसी के समकालीन थे।[१]

डा० श्याम सुन्दरदास नाभादास का समय सं० १६४२-१६८० तक मानते हैं।[२] किन्तु इसके साथ ही साथ डा० दास ने यह भी बताया है कि नाभादास के १०० वर्ष उपरात प्रियादास जी हुए थे जिन्होने 'भक्तमाल' पर सर्वप्रथम टीका की थी। यदि नाभादास का शरीरांत संबत् १६८० मानते हैं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि संवत् १७८० के लगभग प्रियादास जी ने 'भक्तमाल' पर अपनी टीका रची। किन्तु अधिकांश विद्वानों का कहना है कि 'भक्तमाल' की टीका प्रियादास जी द्वारा संवत् १७६९ में लिखी गयी थी।[३] नाभादास के १०० वर्ष बाद प्रियादास ने 'भक्तमाल' पर टीका रची थी। प्रियादास की टीका का रचनाकाल सं० १७६९ माना जाता है। इस प्रकार डा० श्याम सुन्दरदास की तिथियाँ १६४२-१६८० अधिक प्रामाणिक नही प्रतीत होती। क्योंकि इस उपर्युक्त तिथि के आधार पर प्रियादास द्वारा लिखी गयी टीका का रचना-संवत् १७८० होता है जिसका अभी तक कोई भी संकेत इतिहास लेखक द्वारा नहीं प्राप्त होता।

---

१. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५७
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१५
३. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५७

राधाकृष्ण दास ने नाभादास का स्थितिकाल सं० १७६९[१] माना है और इसके पक्ष में यह प्रमाण दिया है कि नाभादास ने प्रियादास को आज्ञा दी थी, 'भक्तमाल' पर टीका करने के लिए। इसी पक्ष का समर्थन करते हुए उन्होंने कुछ पंक्तियों को उदाहरण रूप में भी रखा है :

"महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरन जू,
के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइयै।
ताही समय 'नाभाजू' ने आज्ञा दई, लई धारि,
टीका विस्तारि 'भक्तमाल' की सुनाइयै।
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै,
जगै, जगमांहि, कहि वांणि बिरमाइयै।
जानों निज मति, ऐसे सुन्यों, भागवत शुभ,
मुनि प्रवेश कियौ ऐसेई कहाइयै॥"[२]

प्रियादास द्वारा रचित उपर्युक्त कवित के आधार पर राधाकृष्ण दास ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नाभादास ने (प्रत्यक्ष रूप से) प्रियादास को टीका की आज्ञा दी थी। यह निष्कर्ष कवित की प्रथम दो पंक्तियों पर ही आधारित है। किन्तु वास्तव में यदि सम्पूर्ण कवित्त को भली भाँति पढ़ें तो स्पष्ट हो जाता है कि जब प्रियादास महाप्रभु के कीर्तन में तल्लीन थे, तभी उनको नाभादास का संदेश सुन पड़ता था और संदेशपूर्ण हो जाने पर वाणी विलीन हो गयी थी। टीका के सम्पूर्ण हो जाने पर अंत में प्रियादास के 'नाभाजू को अभिलाष पूरन लै कियो' भी कहा है। अतः स्पष्ट है कि इस तथ्य के आधार पर नाभादास को १७६९ संवत् तक स्थित मानना अनुचित है।

रामचन्द्र शुक्ल[३] ने नाभादास के समय के विषय में कहा है कि, "ये संवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे।" रामचन्द्र शुक्ल के मत से इस बात का भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि नाभादास तुलसीदास के समकालीन रहे होंगे।

डा० राम कुमार वर्मा भी संवत् १६५७[४] को ही नाभादास का समय

---

१. सम्पादक राधाकृष्णदास, भक्तनामावली, भूमिका पृ० ९०, ९१
२. प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका
३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
४. डा० वर्मा : हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २११

मानते हैं। डा० वर्मा ने इस तिथि के विषय में कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया, केवल इतना ही संकेत कर दिया है कि नाभादास का समय लगभग संवत् १६५७ था।

डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी नाभादास का अस्तित्वकाल संवत् १६५७ ही माना है। नाभादास जी गोस्वामी तुलसीदास से अयोध्या मिलने के लिए गये थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ध्यान मे मग्न थे, अतः नाभादास से न मिल सके और नाभादास पुनः वृन्दावन को लौट गये। यह जानकर तुलसीदास स्वयं नाभादास से मिलने के लिये वृन्दावन आये। तुलसी का उदार हृदय देखकर नाभादास ने उन्हे 'भक्तमाल का सुमेरु' कह कर उनका विशद वर्णन 'भक्तमाल' में किया है। इससे इस बात का भी कुछ आभास होता है कि सम्भवत. तुलसीदास और नाभादास समवयस्क थे, कारण कि आयु का अधिक अंतर मिलन में व्यवधान डाल सकता है।[१]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने नाभादास का समय संवत् १६५७ निर्धारित किया है। मिश्र जी के अनुसार दिया हुआ यह समय शुद्ध प्रतीत होता है कारण नाभादास तुलसीदास जी के समकालीन थे, तुलसीदास जी से प्रभावित थे। 'मानस' की रचना सं० १६३१ में प्रारम्भ हो चुकी थी। नाभादास जी तक रामकथा की यह पावन धारा अपने गुरु स्वामी अग्रदास द्वारा अवश्य पहुँची होगी। इसीलिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को भक्तों और कवियों, में सबसे अधिक आदर दिया। मिश्र जी द्वारा निर्धारित यह संवत् सर्वथा विश्वसनीय और अध्ययन का आधार माना जा सकता है।

हरिऔध जी ने नाभादास का समय १७वीं शताब्दी निर्धारित किया है।[२] डा० दीनदयालु गुप्त ने नाभादास जी के समय के विषय मे लिखा है कि 'भक्त-माल' के रचयिता नाभादास जी अष्टछाप के कवियों के समकालीन रामोपासक कवि थे। उन्होने अपने समय के पूर्ववर्ती तथा समकालीन भक्तों के गुणगान किये हैं।[3] संतवाणी अंक, कल्याण के सम्पादक ने नाभादास के समय के विषय में लिखा है कि नाभादास का समय वि० सं० १६५७ के लगभग माना जाना चाहिए।[४]

---

१. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८

२. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३४

३. डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १२३

४. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५

क्षितिमोहन सेन का कथन है कि "नाभादास का समय १६वीं शताब्दी मानना चाहिए।"[१]

एच० एच० विल्सन[२] ने मलूकदास और नाभादास को समकालीन माना है। वास्तव में यह ठीक भी है कि मलूकदास नाभादास और ध्रुवदास सभी समकालीन थे। ध्रुवदास का प्रादुर्भाव अष्टछाप के कवियों के कुछ समय बाद ही हुआ था।[३] इस प्रकार ध्रुवदास आयु में नाभादास से कुछ कम अवश्य थे और मलूकदास की भी आयु नाभादास से कुछ ही वर्ष कम थी। मलूकदास जी का जन्म सवत् १६३१ है और इस तिथि के अनुसार नाभादास का जन्म संवत् लगभग १६२७ ठहरता है। 'भक्तमाल' में मलूकदास जी का वर्णन नहीं, मिलता है, इससे यह विदित होता है कि भक्तमाल बनने के समय तक मलूकदास जी का उदय नही हुआ था, नहीं तो अवश्य उनका वर्णन होता, क्योंकि एक तो ये नाभा जी के एक प्रकट से गुरुभाई थे, दूसरे बड़े महात्मा थे।[४] भक्तमाल में मलूकदास का वर्णन नही मिलता इसका अभिप्राय यह नहीं है कि नाभादास के समय में मलूकदास जी थे ही नहीं। इसी प्रकार ध्रुवदास की 'भक्तनामावली' में भी मलूकदास का उल्लेख नहीं मिलता, तो क्या ध्रुवदास के पश्चात् मलूकदास का समय अनुमानित किया जाय? ध्रुवदास, मलूकदास, नाभादास सभी समकालीन रहे होंगे।[५]

अब तक नाभादास जी के समय के विषय में विद्वान् किसी एक निश्चित

---

१. डा० गुप्त : अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १२३

२. "And next comes the Bhakat Mal of Nabha who is supposed to have lived about the 16th century."

K.M. Sen. : Mediaeval Mysticism, p. 65.

३. "·····we might therefore place Maluk Das where there is reason to place Nabhaji about the end of Akbar's reign....."

H. H. Wilson : Essays and Lectures chiefly on the Religion of Hindus.

४. महाबीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, निबंध प्रकाशित सम्मेलन पत्रिका।

५. महाबीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, निबंध

तिथि तक नहीं पहुँच सके। किन्तु सभी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मतों के आधार पर हम कह सकते हैं कि नाभादास जी का समय संवत् १६३०-१७०० तक था।

नाम

नाभादास का दूसरा नाम नारायणदास भी था। किन्तु नाभादास नाम ही अधिक प्रसिद्ध था। हो सकता है कि अग्रदास से दीक्षा पाने के उपरांत नारायणदास का नाम नाभादास पड़ गया हो। कुछ भी हो साहित्य के क्षेत्र में हमारा आलोच्य कवि नाभादास के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। नाभादास का नारायणदास नाम कुछ भ्रामक भी है और यही कारण है कि डा० ग्रियर्सन ने "हितोपदेश और राजनीति के अनुवादक नारायणदास और छद सार के कर्ता नारायणदास तथा नाभा जी"[1] तीनों व्यक्तित्वों को एक ही माना है।

जन्मस्थान

नाभादास के जन्मस्थान के विषय मे विद्वानों ने कुछ भी नहीं लिखा है। सर्वप्रथम नाभादास के जन्मस्थान के विषय मे सूत्र रूप में जो कुछ भी सूचना उपलब्ध होती है वह है सम्पादक संतवाणी अंक कल्याण द्वारा दी हुई।

नाभादास का जन्म तैलंग देश में रामभद्राचल के आस पास हुआ था।[2] इसके अतिरिक्त नाभादास के जन्मस्थान का संकेत 'भक्तमाल अर्थात् भक्तकल्पद्रुम' में भी उपलब्ध होता है। दक्षिण में तैलंग देश, गोदावरी के समीप उतर में रामभद्राचल एक पहाड़ है,[3] जहाँ पर नाभादास के पिता रहते थे। यहीं पर नाभादास का जन्म हुआ।

माता-पिता

नाभादास जी के पारिवारिक जीवन के विषय में लगभग सभी विद्वान् मौन हैं। यत्र-तत्र कहीं कुछ संकेत मिल जाते हैं जिन पर संतोष कर लेना पड़ता है। नाभादास के पिता का नाम रामदास था जिन्हें हनुमान जी का अंशावतार कहा जाता है, नाभादास इन्हीं के पुत्र थे।[4] 'भक्तकल्पद्रुम' के सम्पादक ने भी नाभा-

---

१. सम्पादक राधाकृष्ण दास : भक्तनामावली, पृ० ९०
२. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५
३. सम्पादक काली चरण चौरसिय : भक्तकल्पद्रुम, पृ० १३ (भूमिका)
४. सम्पादक राधाकृष्ण दास : भक्तनामावली, पृ० ८९

दास के पिता का नाम रामदास ही बताया है।[1] नाभादास के पिता भगवान राम के अनन्य भक्त तथा बड़े विद्वान् थे। गान विद्या में इनके पिता पारंगत थे।[2]

नाभादास अनाथ थे[3], इनका पालन-पोषण गुरु अग्रदास ने किया था। नाभादास "जन्मांध थे, बचपन में ही पिता मर गए। जब यह पाँच वर्ष के थे उस समय इस देश में घोर अकाल पड़ा था। माता इनका लालन-पालन न कर सकी, बन में छोड़ कर चली गयी। उधर कील्ह जी अपने शिष्य अग्रदास के साथ आ निकले। उन लोगों को दया आयी। इन्हें अपने साथ अपने वासस्थान जयपुर के निकटवर्ती गलता स्थान में ले गए।[4] इस उपर्युक्त कथन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास के गुरु ने न का पालन-पोषण किया था।

गुरु

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी थे। इस विषय में सभी विद्वानों में मत-साम्य है। नाभादास को कब उनके गुरु ने दीक्षा दी, इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता। नाभादास के गुरु के विषय में निम्नलिखित विद्वानों से हमें पर्याप्त सूचना मिल जाती है।

शिवसिंह सेंगर[5], मिश्रबंधु[6], डा० श्याम सुन्दरदास[7], रामचन्द्र शुक्ल[8], डा० रामकुमार वर्मा[9], सम्पादक संतवाणी[10] अंक कल्याण, क्षितिमोहन सेन[11]।

---

१. सम्पादक कालीचरण चौरसिया : भक्तकल्पद्रुम, पृ० १३

२. सम्पादक काली चरण चौरसिया : भक्तकल्पद्रुम, पृ० १३

३. "This Nabha as an orphan the Dom cast was picked up by Agradas of Vallabha sect who brought him up."

K M. Sen : Mediaeval Mysticism, p., 65.

४. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ८९-९०

५. शिवसिंह सेंगर : सरोज

६. मिश्रबंधु-विनोद : पृ० ३७५

७. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१५

८. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७

९. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८

१०. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५

११. मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५

उपर्युक्त विद्वानों के मतों का परीक्षण कर लेना समीचीन होगा।

'सरोज' में लिखा है कि, 'कवि नाभादास अग्रदास जी के शिष्य'। इसी प्रकार 'मिश्रबंधु-विनोद' में लेखक ने नाभादास के गुरु का उल्लेख करते हुए कहा है कि, 'नाभादास महात्मा अग्रदास जी के शिष्य थे।' इन विद्वानों ने केवल गुरु का नाम ही गिना दिया था, किन्तु आगे चलकर डा० श्याम सुन्दर दास[1] ने कहा कि, 'इनके गुरु अग्रदास, जिनकी प्रेरणा से इन्होंने 'भक्तमाल' की रचना की थी, बल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि थे। अग्रदास ने भी कुछ राम भक्ति की कविता की है।' डा० दास के विवरण से दो अन्य बातों का भी पता लगता है (क) अग्रदास कृष्णोपासक थे (ख) अग्रदास ने राम भक्ति की कविता की थी। अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से नाभादास ने भक्तमाल बनायी थी।[2]

रामचन्द्र शुक्ल[3] ने कहा है कि, "नाभादास अग्रदास जी के शिष्य बड़े भक्त और साधुसेवी थे।" इसके अतिरिक्त गलता (राजस्थान) की प्रसिद्ध गद्दी में अग्रदास जी रहते थे। इस विवरण से अग्रदास जी के निवास-स्थान के विषय में भी सूचना मिल जाती है।

सम्पादक संतवाणी अंक-कल्याण से एक विशेष सूचना नाभादास के गुरु के विषय में उपलब्ध होती है। उन्होंने लिखा है कि," आपके गुरु का नाम अग्रदास ही है और आपको उन्होंने ही पाला है"। गुरु द्वारा नाभादास के पालन-पोषण की बात सर्वप्रथम इन्हीं से ज्ञात होती है।

क्षितिमोहन सेन ने भी लिखा है कि नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास जी ने किया था।[4]

इस विवरण से नाभादास के गुरु के विषय में निम्नलिखित बातों का ज्ञान होता है :

(क) उनके गुरु का नाम अग्रदास था।

(ख) नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास ने किया था।

---

१. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३३४

२. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ९०

३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६

४. This Nabha as orphan, the Dom cast was picked up by Agradas of Vallabha Sect who brought him up."
K. M. Sen : Mediaeval Mysticism, p. 65

(ग) अग्रदास कृष्णोपासक थे।
(घ) गलता (राजस्थान) की गद्दी में अग्रदास रहते थे।
(च) अग्रदास ने राम भक्ति विषयक कविता भी की थी।

जाति

महात्माओं के सम्मुख जाति-पाँति के बंधन बिलकुल क्षीण हो जाया करते हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक महात्मा निम्न कुल में उत्पन्न हुए और उनसे देश तथा समाज का भारी कल्याण हुआ। इस प्रकार समस्त भक्त कवियों के सम्मुख केवल एक 'हरि के भजन' का ही दृष्टिकोण था। ऊँच-नीच के भेद-भाव से ये महात्मा परे थे। संत साहित्य के बहुसंख्यक महात्मा निम्न जाति के ही थे जिनसे समाज और जाति का पर्याप्त कल्याण हुआ।

नाभादास की जाति के विषय में सब विद्वान् एकमत नहीं हो सके हैं। कोई उन्हें डोम, क्षत्रिय, और कोई उन्हें महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाता है। इस दिशा में निम्नलिखित विद्वानों के मतों का उल्लेख करना आवश्यक है :

(१) प्रियादास[१], रघुराजसिंह[२], (भक्तमाल के टीकाकार), रूपकला[३]
(२) मिश्रबंधु[४], रामचन्द्र शुक्ल[५], राधाकृष्ण दास[६], डा० रसाल[७], डा० रामकुमार वर्मा[८]
(३) क्षितिमोहन सेन[९]

सर्वप्रथम प्रियादास की टीका में नाभादास की जाति के विषय में कुछ संकेत से मिलते हैं। प्रियादास ने नाभादास को महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाया है। रघुराज-सिंह ने नाभादास की जाति के विषय में लिखा है कि नाभादास 'लाङ्गुली ब्राह्मण' थे। रूपकला जी ने नाभादास की जाति के विषय में अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका, पृ० ४७
२. रघुराज सिंह-कृत रामरसिकावली (भक्तमाल की टीका)
३. रूपकला कृत भक्तिसुधा स्वाद-तिलक, पृ० ९
४. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३५८
५. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६-४७
६. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ८९
७. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७
८. डा० वर्मा : हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८
९. सेन : मिडीवियल मिस्टिसिज्म

हुए कहा है कि नाभादास जी डोम नहीं थे। टीकाकार रूपकला जी का कहना है कि पश्चिम में गान-विद्या में प्रवीण जातियों को विभिन्न नाम दिये गए हैं उनमें से कलावंत, ढाढ़ी और डोम आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। नाभादास के वंशज गान-विद्या में पारगत थे तथा राज दरबारों में गाया करते थे। गान-विद्या की श्रेणी-विभाजन के अनुसार नाभादास के वंशज 'डोम' श्रेणी में आते थे। इसीलिए नाभादास को डोम कहा जाता है।

मिश्रबंधु ने नाभादास को 'हनुमान वंशी' कहा है और लिखा है कि मारवाडी भाषा में 'हनुमान' शब्द 'डोम' के लिए प्रयुक्त होता है। अतः नाभादास डोम थे। एक अन्य विद्वान ने यह भी लिखा है कि वैष्णवों के जाति-पाँति वक्तव्य नहीं।[१]

रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि कुछ लोग नाभादास जी को डोम कहते हैं, कुछ लोग क्षत्रिय। यह विषय अब भी विवादग्रस्त है।

राधाकृष्णदास ने नाभादास को 'डोम' जाति का बतलाया है।

डा० राम कुमार वर्मा, डा० रसाल आदि विद्वानों ने इन्हें 'डोम' ही बतलाया है।

क्षिति मोहन सेन ने भी इन्हें डोम जाति का ही बतलाया है।[२]

इन समस्त मतों के परीक्षण के पश्चात् यही जान पड़ता है कि नाभादास सम्भवतः डोम जाति के ही थे, किन्तु फिर भी एक पहुँचे हुए भक्त और साधुसेवी थे। भक्तों के पुनीत चरित्रों का गुणगान कर नाभादास जी ने लोगों के हृदयों में भक्ति-धारा को प्रवाहित किया।

नाभादास जी के ग्रंथ

(१) भक्तमाल : नाभादास का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' है। 'भक्तमाल' में कवि ने लगभग २०० भक्तों के पुनीत चरित्रों का गुण गान किया है। समस्त ग्रंथ छप्पय छंद में लिखा गया है। एक-एक छप्पय में एक-एक भक्त के चरित्र का अंकन कवि ने किया है और कहीं पर एक ही चरित्र के वर्णन में कवि ने कई छप्पय लिखे हैं। मिश्रबंधु[3] ने नाभादास के काव्य को 'तोष' कवि के काव्य की श्रेणी में रखा है।

---

१. **मिश्रबंधु : मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५८**

२. Nabha Das, as Dom cast was picked up by Agradas . . . . . "

K. M. Sen : Mediaeval Mysticism, p.65.

३. **मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५७**

इसके अतिरिक्त विद्वानों ने नाभादास के अन्य ग्रंथ भी बतलाये हैं। उन ग्रंथों का विवरण निम्नलिखित है :

(२) अष्टयाम : मिश्रबधुओं[१] के अनुसार नाभादास ने दो अष्टयाम भी लिखे थे जिनको विद्वान लेखकों ने छतरपुर में देखा था। एक ब्रजभाषा गद्य में है और दूसरा छंदबद्ध है, विशेषतया दोहा, चौपाइयों में। रामचन्द्र शुक्ल[२] ने भी इसी विवरण का समर्थन किया है। हरिऔध जी ने अष्टयाम की कुछ पंक्तियाँ भी उदाहरण रूप में प्रस्तुत की हैं। निम्नलिखित पक्तियों में ब्रजभाषा काव्य के सभी नियमों का कवि ने पालन किया है :

"परिखा प्रति चहुँ दिसि लसत, कंचन कोट प्रकास।
विविध भाँति नग जगमगत प्रति गोपुर पुरवास।
दिव्य फटिकमय कोट की सोभा कहि न सिराय।
चहुँ दिसि अद्भुत ज्योति मैं जगमगाति सुखदाय।"[३]

डा० श्याम सुन्दर दास ने भी उन्हीं समस्त बातों की पुनरावृत्ति की है जिनका प्रसंग 'विनोद' में उपलब्ध होता है।

(३) रामचरित के पद : रामचरित के पद नामक ग्रंथ कुछ समय पूर्व त्रैवार्षिक खोज में मिला है। जिसका उल्लेख मिश्रबंधु, डा० श्याम सुन्दर दास, हरिऔध जी, डा० राम कुमार वर्मा आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में किया है।

मृत्यु

नाभादास की मृत्यु का अनुमान करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास[४] ने कहा है कि नाभादास की मृत्यु लगभग १६८० संवत् के हुई थी। 'मिश्रबंधु विनोद'[५] में नाभादास की मृत्यु-तिथि विद्वान लेखकों ने संवत् १७०० के लगभग निर्धारित की है।

नाभादास का व्यक्तित्व

लेखक की रचनाओं में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हुआ करता है। व्यक्तित्व के अनुकूल ही साहित्यकार की शैली का निर्माण होता है। 'भक्तमाल' की रचना

---

१. वही, पृ० ३५७
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
३. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३५
४. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३३४
५. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३७५

का हेतु और प्रयोजन स्वतः नाभादास की अभिरुचि और व्यक्तित्व को प्रतिभासित कर देता है। नाभादास ने बड़ी उदारता के साथ भक्तों के चरित्र पर प्रकाश डाला है। भक्तों के चरित्र की उदारता, सरलता, धर्मनिष्ठा, सत्य-प्रियता, क्षमाशीलता, औदार्य, और सहज 'रहनी' तथा 'करनी' और 'कथनी' आदि को नाभादास ने विशेष रूप से उद्घाटित किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास स्वतः इन गुणों से युक्त थे। नाभादास का व्यक्तित्व बड़ा मधुर था। दम्भ का लेश भी उनका स्पर्श नहीं कर पाया था। वे मिथ्या गर्व से विहीन और प्रणति-सम्पन्न थे। उनकी अन्तरात्मा सत्यप्रिय और धर्म में पगी हुई थी। नाभादास उदारचेता मनस्वी थे। ब्रह्म के प्रति उन्हें अखंड विश्वास था। सरलता और भक्ति ने उनके दृष्टिकोण को व्यापक बना दिया था। इसीलिए उनके 'भक्तमाल' में न तो साम्प्रदायिक विभेद ही दृष्टिगत होता है और न ऊंच-नीच का भेद-भाव ही।

श्री नाभादास-कृत 'भक्तमाल' हिन्दी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी लोक-प्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि कई भक्तों द्वारा इसकी टीकाएं हुई। अनेक आत्म-ख्याति में अरुचि रखने वाले भक्त कवियों को जीवनियों को प्रकाश में लाने का श्रेय 'भक्तमाल' को ही है। किन्तु आश्चर्य का विषय है कि 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास जी का जीवन आज भी अंधकार में है, और विवाद का विषय बना हुआ है!

आज के कुछ विद्वान 'भक्तमाल' की रचना में कई भक्त कवियों का योगदान स्वीकार करते हैं। 'भक्तमाल' को नाभादास रचित न मानकर कुछ विद्वानों ने नारायणदास, तथा अग्रदास-कृत मानने का आग्रह किया है और निष्कर्ष रूप में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि भक्तमाल की रचना नाभादास, नारायणदास के संयुक्त कर्तृत्व का परिणाम है। मूल ग्रंथ में दो ऐसे छप्पय भी उपलब्ध होते हैं जिनमें अग्रदास की छाप है और इसी आधार पर यह सिद्ध करने का भी प्रयास किया गया है कि 'भक्तमाल' का कुछ अंश अग्रदास का लिखा हुआ है। वे छप्पय इस प्रकार है :

कविजन करत विचार बड़ौ कौउ ताहि भनिज्जै
कोउ कह अपनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै
सौ धारी सिर सेस, सेस सिव भूषन कीनौ
शिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनौ
रावन जीत्यौ बालि, बालि राघौ इक सायक दड़े
अंगर कहैं त्रैलोक में हरि उर धरें तेई बड़े।

नेह परस्पर अघट निबहि चारों युग आयौ
अनुचर को उतकर्ष श्याम अपने मुख गायो
औत प्रौत अनुराग प्रीति सबही जग जानें
पुर प्रवेश रघुबीर भृत्य कीरति जु बखानें
अगर अगुन गुन बरनत सीतापति नित हिय बस
हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यौं भावें हरिदास जस।

इन दोनों छप्पयों में अग्रदास की छाप है अवश्य, किन्तु वास्तव में नाभादास ने इन दोनों छप्पयों को श्रद्धापूर्वक अपने मूलग्रंथ में जोड़ दिया था। इसका प्रमाण 'भक्तमाल' की टीका 'भक्ति सुधा स्वाद तिलक' में भी मिलता है। रूपकला जी ने भी इस बात का समर्थन किया है कि अपने गुरु अग्रदास के इन छप्पयों को नाभादास ने श्रद्धापूर्वक अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में स्थान दिया। विद्वानों ने इस आधार पर भी 'भक्तमाल' की रचना में अग्रदास का विशेष योगदान बतलाया है जो भ्रामक है।

'भक्तमाल' के प्रथम टीकाकार प्रियादास जी हुए। इन्होंने भी नाभादास को ही 'भक्तमाल' का मूल रचयिता माना है। यदि नारायणदास का योगदान मूल 'भक्तमाल' में माना जाय, तो फिर प्रियादास नाभादास के साथ-साथ नारायणदास का भी संकेत अवश्य करते। 'भक्तमाल' की टीका समाप्त करने के अनन्तर नाभादास के शिष्य प्रियादास जी ने लिखा है :

"रसिकाई कबिताई जोन्ही दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाव हैं।
उर रंग भवन में राधिका रमन बसै लसै ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं।
रसिक समाज में बिराज रंसराज कहे चहे मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नावँ पायो उनहूं को मन हरि लीनो ताते राय हैं॥
इनहीं के दास दास-दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौं टीका सुखदाई हैं।
गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन परयो जाको बास वृन्दाबन लीला मिलि गाई है॥
मति अमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मनि मैं सुनाई है॥
तथा— (भक्तमाल—टीका प्रियादास—पृ० ९३९-४०)
"नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौं ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै संतनि लड़ाइकै॥
संबत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन की मास बदी सप्तमी बिताइ कै।
नारायणदास सुख रास 'भक्तमाल' लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥
(भक्तमाल—टीका प्रियादास—पृ० ९४१)

प्रस्तुत उद्धरणों में कुछ पंक्तियाँ विशेष ध्यान देने योग्य हैं। 'घट बढ़ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै' के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथ में क्रम के न होने का कारण दो रचयिताओं नाभादास और नारायणदास का संयुक्त कर्तृत्व नहीं है, वरन् प्रियादास की टीका करते समय यत्र-तत्र हेर-फेर हो गया होगा। "नाभाजू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ" तथा "नारायणदास सुखरास भक्तमाल लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै" आदि द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि नारायणदास और नाभादास दो भिन्न व्यक्तित्व न थे, अन्यथा प्रथम टीकाकार तथा नाभादास के शिष्य प्रियादास जी अवश्य इस रहस्य का उद्घाटन कर देते।

'भक्तमाल' की टीका—'भक्तिसुधा स्वाद तिलक' में भी नाभादास द्वारा ही 'भक्तमाल' की रचना को मान्यता दी गयी है:

"जाकौ जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो,
कियौ यों कबित्त पट मिहिं मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहे आँक चारिही में,
अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है।
सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानौं,
घूमि रही, कहे यह कहा धौ रसाल है।
सुने हे अगर अब जानै मैं अगर सही,
चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है ॥७॥[1]

'भक्तमाल' की अनेक टीकाएँ हुई किन्तु किसी ने भी नारायणदास को 'भक्तमाल' का मूल रचयिता नहीं माना, जैसा कि आज कुछ विद्वान सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त आज के विद्वान जाति के आधार पर भी नाभादास और नारायणदास के पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व का निर्माण करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं और उनकी मुख्य दलील यह है कि, "कुछ लोग इन्हें क्षत्रिय कहते हैं, कुछ हनुमान वंशीय डोम। मेरा ऐसा ख्याल है कि इनमें से एक जाति नारायणदास की और दूसरी नाभादास की।"[2] वास्तव में नाभादास की जाति आज भी विवाद

---

१. रूपकलाजी : भक्तिसुधा स्वाद तिलक

२. डा० किशोरी लाल गुप्त : भक्तमाल के रचयिता नारायणदास और नाभादास, निबंध (जिला पंचायत पत्रिका, आजमगढ़ सन् १९५७)

का विषय है--कुछ विद्वान नाभदास को महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाते हैं (प्रियादास), कुछ क्षत्रिय और कुछ डोम। इस प्रकार नाभादास की जाति के विषय में विद्वानों मे तीन मत प्रचलित है। क्या इन तीन विभिन्न मतों के आधार पर नाभादास के तीन विभिन्न व्यक्तित्वों का निर्माण किया जा सकता है ? कुछ विद्वानों ने नाभादास को ब्राह्मण जाति का ही बतलाया है। नाभादास के शिष्य प्रियादास, महराज रघुराजसिह आदि ने नाभादास को ब्राह्मण जाति का माना है। पश्चिम मे गान-विद्या मे प्रवीण जातियों का विभिन्न नाम दिये गए है, उनमे से कलावन्त, ढाढ़ी और डोम अधिक प्रसिद्ध है। नाभादास के वशज गान-विद्या में पारगत थे तथा राज-दरबारो मे गाया करते थे। गान-विद्या की श्रेणी विभाजन के अनुसार नाभादास के वंशज 'डोम' श्रेणी मे आते थे। इसीलिए नाभादास को 'डोम' कहा जाता है।[1] हिन्दी के अधिकाश विद्वानों ने नाभादास को 'डोम' जाति का बतलाया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणो की एक शाखा 'डोम', जो गान-विद्या में प्रवीण होते थे, नाभादास उसी जाति के थे।

डा० ग्रियर्सन ने 'भक्तमाल' के सयुक्त कर्तृत्व पर विशेष ज़ोर दिया था, किन्तु इस भ्रम की उत्पत्ति नाभादास के नारायणदास नाम के कारण हुई। नाभादास का नारायणदास नाम कुछ भ्रामक अवश्य है और यही कारण है कि डा० ग्रियर्सन ने "हितोपदेश और राजनीति के अनुवादक नारायणदास तथा छंदसार के कर्त्ता नारायणदास तथा नाभा जी " तीनों व्यक्तित्वों को एक ही माना है।[2]

'भक्तमाल' में भक्तों तथा भक्त-कवियों के वर्णन में कोई क्रम नही दिखायी पड़ता। इस आधार पर भी 'भक्तमाल' के संयुक्त कर्तृत्व पर ज़ोर दिया जाता है। नाभादास ने अपने शिष्य गोविन्द 'भक्तमाली' को भक्तमाल कंठस्थ करवा दी थी और गोविन्द द्वारा भक्तमाल में हेर फेर होना सम्भव है[3] जो क्षम्य है।

नाभादास का ही दूसरा नाम नारायणदास था। अतः 'भक्तमाल' में यदि नारायणदास नाम की अधिक छाप हो तो इससे अन्य किसी व्यक्ति की कल्पना करना समीचीन नही। एक व्यक्ति के दो नाम भी हो सकते हैं।

---

१. रूपकला कृत भक्ति सुधा स्वाद तिलक, पृ० ९

२. सम्पादक-राधाकृष्णदास, भक्तनामावली, पृ० ९०

३. प्रियादास : भक्तमाल-टीका छप्पय संख्या १९२

चतुर्थ परिच्छेद

भक्तमाल का वर्ण्य-विषय

अपने गुरु अग्रदास से आज्ञा पाकर नाभादास (नारायणदास) जी ने 'भक्त-माल' की रचना कर, अनेक भक्तों के पुनीत चरित्रों के यश का वर्णन किया है। 'भक्तमाल' मे अनेक भक्तो के लौकिक चरित्रो का वर्णन कर, नाभादास जी ने उनके महत्त्व को जो विशिष्टता प्रदान की है, वह जनता के लिए एक नवीन आक-र्षक सामग्री थी। संस्कृत के विद्वान हिन्दी-साहित्य को हेय समझते थे, अतः भक्त कवियों को भी जिन्होने अपने भाव प्रकाशन का माध्यम हिन्दी भाषा को बनाया था, वे हीन समझते थे। ऐसे भक्त कवियों को नाभादास ने 'भक्तमाल' के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। धीरे-धीरे ऐसे भक्त भी प्रकाश में आने लगे। 'भक्तमाल' में दो सौ भक्तो के चरित्र संगृहीत है। चरित्रों के इस संकलन मे कवि ने भक्तों के चरित्रों के ऐसे उज्ज्वल पक्षो को ही सम्मुख रखा है, जो उनके महत्त्व को बढाने में सहायक हुए है। किसी भी भक्त का सम्पूर्ण जीवन, इन भक्तों के विवरण में पूरे तौर से उद्घाटित नही हो सका। भक्तो के यह वर्णन प्रशंसात्मक और कुछ अलौ-किकता को लिए हुए हमारे सम्मुख आते है। कवि नाभादास ने भक्तो के महत्व बढ़ाने मे जो सक्रिय कार्य किया है, उसका अपना स्वय का महत्त्व है।

साहित्य-सर्जना के पीछे साहित्यकार का दृष्टिकोण विशेष कार्य किया करता है। कार्य और कारण का घनिष्ट सम्बंध है। बिना कारण के कार्य नही सम्पन्न होता। कवि केवल भावुकता के बहाव मे बह कर ही काव्य की सृष्टि नही करता, वरन् अपने काव्य को माध्यम बनाकर, दूसरो तक सदेश भेजता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि काव्य मे जीवन के अनेक तत्व सन्निहित रहते है।

"साहित्यकार एक ज्योति है, एक मशाल है, जो स्वतः जलकर जनता का पथ आलोकित करता है। उसके साहित्य में जनता के अनेक मूक-तार झंकृत हुआ करते

हैं।"[१] वास्तव मे किसी भी साहित्यकार की कृति में समाज का सजीव चित्र प्रतिबिंबित हुआ करता है। समाज से ही साहित्यकार अपने साहित्य के भरण-पोषण के लिए सामग्री एकत्र करता है। साहित्य और समाज में घनिष्ट सम्बंध है। समाज के वातावरण से सामग्री ग्रहण कर, साहित्यकार अपने साहित्य का निर्माण करता है। साथ ही साथ साहित्यकार साहित्य के द्वारा समाज को अनेक संदेश भी दिया करता है, तथा संदेश का साधारणीकरण होना ही साहित्यकार की सफलता का मापदंड है।

मनुष्य का हृदय-मंदिर नाना प्रकार की अनुभूतियों और भावनाओं का केन्द्र हुआ करता है। स्वभावतः मनुष्य अपने विचारों और अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए उत्सुक रहा करता है। अपनी अनुभूतियों को कल्पना के रंग मे अनुरंजित क , दूसरों को रस-विभोर करने का, उद्देश्य ही साहित्यकार का प्रथम दृष्टिकोण हुआ करता है। साहित्यकार इसी सत्र से प्रेरणा पाकर साहित्य सर्जना करता है। साहित्य और जीवन का घनिष्ट सम्बंध है। प्रत्येक का अस्तित्व एक दूसरे पर पूर्णतया निर्भर रहता है। "साहित्य का प्रयोजन एवं जीवन का प्रयोजन अथवा उनके अंतिम लक्ष्य मे परस्पर नैकट्य का सम्बंध है। यदि साहित्य जीवन से प्रभावित भी है, तो वही साहित्य जीवन दर्शन के लिए उपयोगी तथ्यों एवों तत्वों की सर्जना भी करता है।"[२] साहित्य की धारा अनादि काल से ही अबाध गति से हमारे जीवन के धरातल पर सतत प्रवहमान है।

गद्य की अपेक्षा, पद्य में प्रभावित करने की शक्ति अधिक हुआ करती है। पद्यमय भाषा में कही हुई बात हमारे मस्तिष्क मे घर कर लेती है। इसका प्रभाव स्थायी हुआ करता है। यही कारण है कि उपदेशों के लिए अनेक कवियों ने कविता का ही सहारा लिया है। कवि नाभादास ने भी काव्य के माध्यम से भक्तों के चरित्रों का वर्णन कर उन्हें जनता के मध्य स्थायित्व प्रदान किया है। इस प्रयास से जनता के मध्य भक्तों का आदर और सम्मान अधिक बढ गया था।

काव्य के प्रयोजन के विषय मे विद्वानो मे बडा मत-भेद है। आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन के विषय मे कहा है कि व्यवहार-ज्ञान, दुःख का विनाश ही काव्य रचना का मूल प्रयोजन है :

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : प्रेमचन्द, परिशिष्ट, पृ० २७

२. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २०६

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कांता सम्मिततयोपदेश युजे ।।"[१]

कुछ विद्वान आनन्द को ही काव्य का मूल-प्रयोजन मानते हैं । भामह के अनुसार काव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन है :

"धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च ।
प्रीति करोति कीर्तिञ्च साधु काव्य निषेवणम् ।।"

'साहित्यदर्पणकार' भामह के इस कथन से पूर्णतया सहमत है ।[२] भरत-आनन्द-वर्धन तथा अभिनव गुप्त आदि विद्वान नैतिक तथा धार्मिक विकास के लिए, काव्य का प्रयोजन नहीं मानते । पाश्चात्य विद्वानों मे भी काव्य के प्रयोजन के विषय मे मतसाम्य नही है । स्पिनर्ग के मत मे काव्य का उद्देश्य शिक्षा एवं आनन्द देना ही नही है, वरन् उसका लक्ष्य है अभिव्यक्ति ।[३] ब्रेडले के मतानुसार काव्य स्वयं अपना साध्य है, वह धर्म, सस्कृति, शिक्षा आदि का साधन नहीं है । टालसटाय काव्य की मुख्य कसौटी नीति और धर्म को मानते है ।[४] "मैथ्यू आर्नाल्ड नैतिकता के प्रति विद्रोही एवं उदासीन काव्य को जीवन के प्रति विद्रोही एवं उदासीन मानता है ।"[५] टी० एस० इलीयट का कहना है कि काव्य का

---

१. काव्य-प्रकाश, श्लोक २

२. गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० ४५

३. We have done with all moral judgment of art... Some said that poetry was meant to instruct. Some merely to please some to do both. Romantic-criticism first enunciated the principle that art has no aim except expression, that its aim is complete when expression is complete, that beauty is its own excuse for being.

४. In every age and in every human there exists a religious sense of what is good and what is bad common to that whole society and it is this religious conception that decides the values of the feelings transmitted by art.

What is Art (Oxford) 128-29.

५. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २०७-२०८

नैतिकता, धर्म भावना और सम्भवतः राजनीति से भी कुछ सम्बंध है, यद्यपि उन्हें स्वयं यह सम्बंध ज्ञात नहीं है ।[१] आई० एस० रिचर्ड के विचार बहुत कुछ मम्मट से साम्य रखते हैं । इस विद्वान् के अनुसार कवि अपनी कविता स्वांतःसुखाय या उपदेश देने के लिए करते हैं और कभी-कभी दोनों दृष्टिकोणों से भी ।[२] पाश्चात्य विचारक प्लेटो, अरिस्टाटिल, होरिस, दांते, मिल्टन आदि भारतीय विचारक भरत, आनन्द वर्धन एवं अभिनवगुप्त आदि से बहुत कुछ मत-साम्य रखते है ।

उक्त समस्त विद्वानों के काव्यादर्श एव काव्य के प्रयोजन विषयक मतों के अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी के संत कवियों का दृष्टिकोण इनसे पर्याप्त भिन्न था । संतों के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हे लौकिक ऐश्वर्य एव यश की लालसा नही थी । संत भौतिक जगत मे रहते हुए भी भौतिकता एव इस सासारिकता से परे रहते थे । व्यवहार आदि की शिक्षा सतों के काव्य मे अधिक उपलब्ध नही होती है । रूढ़ियों और आडम्बर के विरुद्ध संतों की विद्रोही भावनाओ का विस्फोट हुआ । काव्य के प्रचलित आदर्श भी इन संत कवियो को मान्य नही थे । ये संत कवि 'लीक' से 'बेलीक' चलकर अपनी अक्खड़ता को जनता के सम्मुख रखना चाहते थे । परम्पराओं में बँधकर चलना इनके स्वभाव के विरुद्ध था । कविता मे इन संत कवियों ने भाव को ही प्रधानता दी थी । पिंगल शास्त्र के नियमों की संतों ने अवहेलना की । फिर भी संत कवियों के कुछ काव्यादर्श थे । वास्तव में इन कवियों की देन साहित्य के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती है ।

समय के साथ-साथ साहित्यिक मापदंडों और आदर्शों में परिवर्तन उपस्थित होते रहते है । देश की राजनैतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप, देश का साहित्य भी एक नवीन रूप धारण कर लिया करता है । हिन्दी काव्य के आदिकाल से संत-काव्य तक काव्य के दो रूप हमारे सम्मुख आते है । प्रथम है धार्मिक प्रवृत्ति से सम्बद्ध और द्वितीय है चारण-प्रवृत्ति से सम्बद्ध ।

---

१. . . . . Poetry as certainly has something to do with morals and with religion, and even with politics perhaps, though we cannot say what.

The Sacred wood, 1928 Edition,

२. I. S. Richard : Principles of Literary Criticism (Tenth Impression)

संत-काव्य में निहित प्रयोजन विषयक सामग्री पर यहाँ विचार करना समीचीन होगा ।

संत-काव्य धारा के प्रवर्तक कबीर ने कवि और कविता के विषय में कुछ अधिक नहीं कहा है, किन्तु फिर भी कबीर के काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि में कवि सामान्य व्यक्ति से उच्च स्तर का हुआ करता है । कबीर कवि को मृत समझते थे :

'कवि कवीने कविता मुये'

कबीर उसी को सच्चा कवि मानते थे जो तत्व के अनुभव का गायन करे—

जग भव का गावना का गावै ।
अनुभव गावै सो अनुरागी है ॥

संत कवि नानक ने काव्य को राम नाम के मार्ग में एक बाधा के रूप में देखा था । उनका कहना था कि राम नाम के मार्ग मे काव्य बाधा उपस्थित करता है । शब्द, साखी आदि से भगवान की कृपा नहीं प्राप्त हो सकती । अतः काव्य में व्यर्थ के लिए समय न नष्ट करके भगवान का भजन करना चाहिए जिससे मृत्यु के पश्चात् आत्मा को कष्ट न भोगना पड़े :

"शब्दन साखी सची नहीं प्रीति ।
जमपुर जाहिं दुखाँ की रीति ॥" (प्रांण-संगली, पृ० २४)

संत कवि मलूकदास का काव्यादर्श नानक और कबीर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है । मलूकदास प्राकृत विषयों पर काव्य-रचना को हेय समझते थे । काव्य-रचना का उद्देश्य तो ब्रह्म की प्रशंसा एवं गुण-गान ही होना चाहिए :

"अदम कबित्त का जिसकी कबिताई करूँ,
याद करूँ उसको जिन पैदा मुझे किया है ।
गर्भबास पाला आतस मे नहिं जाला,
तिसको मैं बिसारूँ तो मैं किसकी आस जिया हूँ ॥"[1]

जगजीवन साहब ने वेद, पुराण आदि की कटु निंदा की है । उनका कहना है कि बिना भजन, बिना भक्ति के सब कुछ निःसार है, चाहे वह काव्य-रचना हो अथवा ग्रंथ रचना ।[2] तत्व को त्याग कर व्यर्थ में ही कवि तत्व रहित पदार्थों मे फँसे रहते हैं :

---

१. मलूकदास की बानी, पृ० ३१
२. त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २१९

"पढ़ै पुराण ग्रंथ रात दिन करै कविताई सोई ।
ज्ञान कथै शब्द कहै, कहु तबहू भक्ति न होई ।।"[१]

संत कवि शिवनारायण साहब के अनुसार ब्रह्म के गुणो की अभिव्यक्ति करना ही काव्य का प्रमुख ध्येय है । इसके अतिरिक्त उन्होंने उसी कविता को कल्याण-कारी माना है जिसमें संतों द्वारा ब्रह्म का गान हुआ हो ।

"संत सबद सुनि भो अनुरागा ।
बिनु गुरु भक्ति मुक्ति किमि लागा ।"[२]

"सुन्दरदास का काव्यादर्श सर्वप्रथम ब्रह्म का यशोगान है, तदनन्तर काव्य-सौदर्य, काव्य-सरसता आदि ।"[३]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी संत कवि काव्य का प्रयोजन ब्रह्म का गुण-गान ही मानते थे । यह सभी कवि 'स्वांत:सुखाय' काव्य की सर्जना करते रहते थे ।

कृष्णोपासक और रामोपासक अनेक कवियों ने अपना काव्य 'स्वांत: सुखाय' के दृष्टिकोण से ही निर्मित किया था । तुलसी, सूर आदि जैसे हिन्दी के महान् कवियों के सम्मुख भी काव्य का एक निश्चित प्रयोजन अवश्य ही रहा होगा । उनके अपने कुछ काव्यादर्श भी थे । यह भक्त कवि भी भगवान की लीला का वर्णन काव्य के माध्यम से करते थे । तुलसी के सम्मुख काव्य लिखने का ध्येय केवल यही था कि भगवान के पुनीत निर्मल चरित्र का वर्णन काव्य के माध्यम से हो । मनुष्य चरित्र का वर्णन काव्य के माध्यम से करने पर सरस्वती भी सिर धुनती हैं ।[४] तुलसी के काव्यादर्श भी उनके काव्य से प्रकट हुए हैं । कविता के लिए विवेक (बुद्धि) एक अनिवार्य तत्व है :

"कवित बिबेक एक नहिं मोरे ।
सत्य कहउं लिखि कागद कोरे ।।"[५]

---

१. शब्द-संग्रह, पृ० ७५
२. गुरु-अन्यास, पृ० १९
३. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २२७
४. कबि कोबिद अस हृदय बिचारी । गाँवहि हरि जस कलमल हारी ।।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।
रामचरित मानस, मूल गुटका, २३ वाँ संस्करण, पृ० ४२
५. तुलसी : रामचरित मानस

काव्य के लिए सरलता सरसता आदि भी आवश्यक तत्व है। कारण कि काव्य तो मनुष्य को रस मग्न कर देने का एक प्रमुख साधन है :

"सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहि सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान।"[1]

तुलसीदास जी का मत था कि, **"कीरति भनति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।"**[2] गोस्वामी जी के मत से कवित्व निर्मल और सरल ही अधिक श्रेयस्कर होता है। तुलसीदास जी को रामचरित विषयक काव्य लिखने की निर्मल बुद्धि शकर के प्रसाद से प्राप्त हुई थी, कारण कि शंकर ही रामचरित के सर्वप्रथम लेखक थे।[3] सूर के काव्यादर्श विषयक विचारो की अभिव्यक्ति उनके साहित्य मे नही हुई है परन्तु उनके काव्य का उद्देश्य धार्मिक भावना से पूर्ण तथा आनन्ददात्मक था। "जहाँ तक कविता का कलापक्ष है, वे संस्कृत काव्य से प्रभावित थे।"[4] केशवदास आचार्य के रूप मे विख्यात है। कवि कर्म का उल्लेख करते हुए उन्होने लिखा है :

"चरण धरत चिन्ता करत, नींद न भावत शोर।
सुवरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥"[5]

फिर उनका विश्वास था कि उत्तम कोटि के कवि हरि रस में लीन रहते है :

"केशव तीनहुँ लोक में विविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की वर्णत सब सुख पाय॥
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरिरस लीन।
मध्यम मानत मानुषिन, दोष अधम प्रबीन॥[6]

केशवदास जी का काव्यादर्श बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

नाभादास के समकालीन कवियों के काव्यादर्श का अध्ययन कर लेने के पश्चात् अब 'भक्तमाल' में व्यक्त काव्यादर्श विषयक भावनाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। यह तो पीछे कहा ही जा चुका है कि नाभादास भक्त कवि थे। वे पहले भक्त थे, तदनन्तर कवि। इसीलिए काव्य के आदर्श-विषयक

---

१. वही २. वही
३. शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम चरित मानस कवि तुलसी।
४. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० ३४४
५. कविप्रिया ६. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, छंद १-२

विचार उनके ग्रंथ में कहीं पर स्पष्ट रूप से नहीं व्यक्त हुए हैं। परन्तु फिर भी 'भक्तमाल' में यत्र-तत्र कुछ ऐसे कथन मिल जाते हैं जिनसे नाभादास का काव्यादर्श निर्धारित किया जा सकता है। इस दृष्टि से कवि के निम्नलिखित छंद पठनीय होंगे :

"जग कीरति मंगल उदै, तीनों ताप नसायँ।
हरिजन को गुण बरनते, हरि हरदि अटल बसायँ॥[१]
जो हरि प्राप्ति की आस है, तो हरिजन गुन गाय।
नतकसुकृत भुँजे बीज ज्यों, जनम जनम पछिताय॥[२]
भक्त दाम संग्रह करै, कथन, स्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यौं, बैठे हरि की गोद॥[३]
भक्त दाम जिन जिन कथी, तिनकी जूँठनि पाय।
मों मतिसार अक्षर द्वै, कीनौं सिलौ बनाय॥"[४]

प्रस्तुत उद्धरणों मे से अंतिम छंद विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। कवि नाभादास ने अपनी विनयशीलता का परिचय देते हुए कहा है कि,"जिन जिन यशस्वी और उदार चेता कवियों ने भगवत् भक्तों के सुयश का वर्णन किया है और भक्तों के शुभ्र चरित रूपी माला को हरि चरणों में समर्पित किया है, उन्हीं की 'जूठनि पाय' कर अपनी अल्प मति के अनुसार दो-चार अक्षरों को मिलाकर 'भक्तमाल' की रचना मैने की है।" स्पष्ट है कि कवि का ध्यान काव्य-रचना की ओर इतना नहीं गया जितना भक्तों के उज्वल चरित की ओर। कवि के मत से ब्रह्म को वही प्रिय है जो भक्तों के चरित का संग्रह, गान और अनुमोदन करता है। काव्य के सम्बंध में इस प्रकार की धारणा लेकर नाभादास ने भक्तमाल की रचना की थी।

नाभादास के कवित्व का लक्ष्य था ब्रह्म का गुणगान करने वाले तथा समय-समय पर जनता को हरिरसामृत सिन्धु में अवगाहन करानेवाले भक्तों और भक्त-कवियों का यशोगान और गुणगान करना। इन चरित्रों और चरितों को जनता के समक्ष व्यक्त करके उसे कल्याण के पथ पर अग्रसर करने के

---

१. भक्तमाल, पृ० ९३६
२. भक्तमाल, पृ० ९३७
३. भक्तमाल, पृ० ९३७
४. भक्तमाल, पृ० ९३८

लिए भक्तमाल को रचना हुई थी । इसी कारण नाभादास की इस रचना मे तुलसीदास और सूरदास का कवित्व, केशवदास का आचार्यत्व, देव और मतिराम का पद-लालित्य, नन्ददास का-सा शब्द-चयन, विहारी का काव्य-सौष्ठव' विद्यापति का माधुर्य, कालिदास की उपमाएँ खोजना उनके कवि के प्रति अन्याय करना होगा ।

'भक्तमाल' की रचना नाभादास ने अपने गुरु से आज्ञा पाकर की थी । अग्रदास ने नाभादास को यह उपदेश किया कि इस भव के पार जाने का सुगम मार्ग एक यही है कि भक्तो का गुण गान किया जाय । इससे उत्तम, सरल और सुलभ मार्ग दूसरा नही है :

"उन हरि आज्ञा पाय, सकल ब्रह्मांड उपायो ।
इन गुरु आज्ञा पाय, भक्त निर्णय को गायो ।।"[१]

भक्तों के चरित्रो का वर्णन नाभादास जी ने 'भक्तमाल' मे श्रद्धा-पूर्वक किया है । इसमे वर्णित चारो युगों के भक्तो की माला रसपूर्ण है जो भक्त-हृदय को रस-विभोर कर देती है :

"चार युगन के भक्त गुणन की गूँथी माला ।
अंगहि अंग विचित्र बनी यह परम रसाला ।।"[२]

भक्त के महत्व का निर्देश तुलसीदास जी ने भी किया है कि 'राम ते' 'अधिक राम' का 'दास' हुआ करता है । 'भक्त' भगवान तक पहुंचने की एक मध्यम कड़ी है । सच्चा भक्त वही है जिस पर भगवान की कृपा हो । 'भक्त' और 'भगवान' के भजन से अनेक पापो का विनाश होता है और यही दो सुगम साधन हैं जिनका निर्देश वेद, पुराण सभी ने किया है :

"सब संतन निर्णय कियो, श्रुति, पुराण, इतिहास ।
भजबे को द्वौ सुघर हैं, की हरि, की हरिदास ।।"[३]

वास्तव में भक्त की स्थिति भगवान के सदृश्य ही हुआ करती है । कारण कि वह इस विश्व में रहता हुआ भी निर्लिप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि कमल जल मे ही उत्पन्न होता है, किन्तु वह सदैव जल के धरातल से ऊपर रहता

---

१. प्रियादास-कृत सम्पादित रूपकला द्वारा टीका भक्तमाल
२. प्रियादास-कृत सम्पादित रूपकला द्वारा टीका भक्तमाल
३. टीका प्रियादास, टिप्पणी रूपकला द्वारा ।

है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि को पराजित कर, इन्द्रिय-निग्रह करने के बाद ही, भक्त का सच्चा स्वरूप हमारे सम्मुख आता है। भक्त के महत्त्व को देखिए :

"अग्र कहें तिहुँ लोक में हरि उर धर सोई बड़ो ।।"

भगवान को हृदय में धारण करने वाला अथवा सच्चे अनुराग से भजने वाला ही तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। 'भक्त' की भक्ति 'भजन' से प्रारम्भ होकर भगवान में लीन होने तक चलती रहती है। तुलसी ने भी कहा है कि :

"की तुम हरिदासन महँ कोई, मोरे हृदय प्रतीति अस होई।"[1]

इस पंक्ति से हरि के 'दासों' की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। नाभादास भक्त के महत्त्व से भली-भाँति परिचित थे। वह इस तथ्य को समझते थे कि :

"भक्ति, भक्त, भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किएं नासत विघ्न अनेक ।।"[2]

जीवमात्र को, जो हरिविमुख थे, उस समस्त जाति को भगवान की ओर उन्मुख करना ही आपका (नाभादास) उद्देश्य था। इसी उद्देश्य को आधार-शिला बनाकर 'भक्तमाल' रूपी महल का निर्माण हुआ जिसमें अनेक मनुष्यों को सुख-पूर्वक रहने का भवन मिला। नाभादास रामानन्द के ही सम्प्रदाय के थे। रामानन्दी सम्प्रदाय का प्रथम उद्देश्य यह था कि जीवमात्र को हरि सन्मुख लाकर, भगवान की भक्ति रूपी धारा मे पूर्ण रूप से अवगाहन कराया जाय। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही नाभादास ने भक्तों की इस माला को पिरोया था

रघुराज सिंह ने 'भक्तमाल' की टीका 'रामरसिकावली' में कहा है कि :

"बिना संतपद सेवन कीन्हे। कोउ नहिं हरिस्वरूप सति चीन्हे।
जहँ जहँ जाको मिले मुरारी। हेतु संतपद सेव बिचारी ।।"[3]

रघुराज सिंह अपने समय के पहुँचे हुए रामभक्त कवि हुए हैं। इन्होंने भी 'भक्तमाल' की टीका में इस तथ्य का स्पष्ट निर्देश किया है कि बिना भक्तों, संतों की सेवा किए भगवान के रूप के दर्शन नहीं हो सकते। जब-जब और

---

१. तुलसीदास: (मूल गुटका) २३वाँ संस्करण
२. नाभादास : भक्तमाल (मंगलाचरण)
३. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (टीका भक्तमाल), पृ० २८

जहाँ भी कभी किसी को भगवान के दर्शन हुए हैं, वह भक्तों की सेवा के परिणामस्वरूप ही। भक्तों के अनुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य इस लोक से मुक्ति प्राप्त कर, स्वर्ग को प्राप्त करता है :

"संतसेव परभाव अरु, भक्त अनुग्रह पाय ।
रामधाम को जात भो, चढ़ि बिमान सुख पाय ।।"[1]

रघुराज सिंह फिर कहते हैं कि इस भवसागर से पार जाने के लिए राम भक्तों के चरणों की वंदना और सेवा करनी चाहिए :

"पारावार अपार यह, अति कराल संसार ।
भजहु राम भक्तन चरण, चहहु जान जो पार ।।"[2]

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान और भक्त स्थिति में भिन्नता रखते हुए भी प्रभाव मे एक दूसरे के बराबर है। कल्याण संत अंक में भक्तों के महत्व का निर्देश करते हुए कहा गया है कि इस जग के मायाजाल से मुक्ति दिलाने का प्रमुख और महत्त्वपूर्ण साधन है, भक्तों के चरणों की सेवा तथा उनके गुणगान करना ।

उपर्युक्त समस्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि 'भक्तमाल' के रचने में नाभादास का उद्देश्य यह था कि भगवद्स्वरूप भक्तों का सम्मान जनता में बढे तथा भक्ति का प्रसार हो ।

आधुनिक युग के लेखकों ने भी 'भक्तमाल' रचना के उक्त उद्देश्य ही माने हैं। 'भक्तमाल' की रचना के उद्देश्य के विषय में डा० रसाल ने कहा है कि, "इसके द्वारा आपका उद्देश्य जनता में भक्तों के प्रति पूज्य-भाव तथा आदर के भाव उत्पन्न करता था । इस उद्देश्य की पूर्ति भी इससे अच्छी हुई और वास्तव में जनता की श्रद्धा और भक्ति भक्तों के प्रति अधिक हो गई।"[3] प्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने भी इन्हीं विचारों का प्रतिपादन किया है।[4] मिश्रबंधु लिखते हैं कि 'भक्तमाल' का महत्त्व इसलिए अधिक है कि इसमें संतों के चरित्र-रक्षण की पूरी-पूरी योजना की गई है।[5] 'भक्तमाल' जन जीवन को मुक्ति का संदेश देता है ।

---

१. रघुराजसिंह : रामरसिकावली, पृ० १०७६
२. रघुराजसिंह : रामरसिकावली, पृ० १०७६
३. डा० राम शंकर शुक्ल 'रसाल' : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७
४. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
५. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३६०

"भक्तों के चरित सदा ही नवीन हैं, सदा ही मंगलमय हैं, सदा ही सात्विक स्फूर्तिदायक हैं एवं सदा ही चिंतन, मनन और सेवन करने योग्य हैं ।... आदर्श, व्यवहार, इन्द्रिय मन पर विजय, पवित्र सेवा-भाव, त्याग और तपस्या, विषय-विरक्ति भगवद्भक्ति और प्रेम आदि का सच्चा स्वरूप उपदेशों में नहीं मिलता । वह तो भक्त चरितों में ही प्रत्यक्ष प्राप्त होता है ।"[१] वास्तव में भक्तों का चरित्र गंगाजल की भाँति पवित्र, सूर्य की किरणों की भाँति प्रखर होता है जिससे कलुषता का विनाश हो जाता है, सर्वत्र प्रकाश का साम्राज्य छा जाता है । जीवन को भौतिकता की ओर से आध्यात्मिकता की ओर ले जाना 'भक्तमाल' जैसे ग्रंथ का ही काम है ।

'भक्तमाल' में दो सौ भक्तों का संक्षिप्त वृत्तान्त दिया गया है । क्या भारतीय धर्म के इतिहास में केवल यही दो सौ भक्त आविर्भूत हुए थे, जिनके चरित्रों का विवरण 'भक्तमाल' में मिलता है अथवा और भी भक्त थे जिनका संचयन ग्रंथकार ने नहीं किया । निस्संदेह इन भक्तों के अतिरिक्त भी अनेक भक्त हुए हैं, कुछ तो ऐसे भी संत हुए हैं जो नाभादास के समकालीन होते हुए भी इस ग्रंथ में स्थान न पा सके । भक्तों के चरित्रों के संचयन में प्रेरणा देने वाले जो मूल-सिद्धान्त कार्य करते हैं वे बहुधा ये हैं :

(क) संचयनकर्त्ता की किसी विशेष सम्प्रदाय के प्रति आस्था ।

(ख) कुछ चुने हुए भक्त-कवियों के काव्य के प्रति ही आकर्षण कुछ विशेष कवियों के काव्य के प्रति ही नाभादास आकर्षित हुए हों ।

(ग) किसी युग विशेष के, विशेष भक्त-कवियों को मान्यता देने की भावना ।

सम्भवतः नाभादास के सम्मुख भी ये बातें रही हों । नाभादास के विषय में यहाँ उक्त सिद्धान्तों के आधार पर विचार करना समीचीन होगा ।

(क) सम्प्रदाय के प्रति आस्था : कवि नाभादास रामानन्दी सम्प्रदाय के थे । चरित्रों के संचयन के समय अवश्य ही यह प्रश्न रहा होगा कि अमुक सम्प्रदाय के कवियों (भक्तों) का विवरण अधिक विस्तार के साथ दिया जाय । नाभादास ने राम भक्त कवियों का उल्लेख बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक किया है और तुलसीदास जी को तो 'भक्तमाल' का 'सुमेरु' तक कह दिया है । निस्संदेह तुलसी प्रशंसा के अधिकारी थे, किन्तु फिर भी रामोपासक कवियों, भक्तों के चरित्र-अंकन में नाभादास की श्रद्धा पूरे तौर से परिलक्षित होती है । हो सकता

---

१. सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार : कल्याण भक्त चरितांक, पृ० ८०७

है कि नाभादास की सम्प्रदाय के प्रति आस्था ने ही उन्हें 'रामभक्ति' के कवियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्ता प्रदान करने के लिए विवश किया हो। चरित्रों के संचयन मे अपने सम्प्रदाय का आकर्षण होता ही है। यदि नाभादास ने भी अपने सम्प्रदाय के भक्तों के प्रति अधिक श्रद्धा के भाव प्रकट किये है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

(ख) भक्त कवियों के काव्य के प्रति आकर्षण : किसी कवि विशेष के काव्य के प्रति जो आकर्षण हुआ करता है, उसके अनुसार भी संचयन में स्थान निर्धारित किया जाता है। कवि नाभादास किसी भक्त-कवि के काव्य से प्रभावित थे, इसके विषय मे कोई विशेष प्रमाण ही मिलता। किन्तु फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नाभादास के मस्तिष्क पर तुलसी के काव्य का विशेष प्रभाव पड़ा था। तुलसी के 'मानस' के विषय मे नाभादास ने कहा भी है कि कविकाल मे यह एक नौका के समान है, जो मानव को भवसागर के पार पहुँचा सकती है :

"संसार अपार के पार को सुगम रीति नौका लयौ।"[1]

सूरदास जी के काव्य को भी नाभादास ने भूरि-भूरि प्रशसा की है। भक्त-कवियों से प्रभावित होने का प्रमुख कारण उनका काव्य ही हुआ करता है। यदि चरित्रों के सचयन के समय नाभादास जी के मस्तिष्क मे इस प्रकार की कोई बात रही हो, तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

(ग) किसी युग विशेष के भक्तों से प्रभावित : भक्तों अथवा कवियों के निर्माण में युग-विशेष की परिस्थितियां भी कार्य किया करती हैं। काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं।"[2] नाभादास, तुलसी तथा अष्टछाप के कवियों के समकालीन थे। जितना प्रामाणिक विवरण उन्होंने अपने युग के कवियों का प्रस्तुत किया है, उतना अन्य युगों के कवियों का नहीं। वास्तव में जितना हम अपने समय के विषय में जान सकते हैं, उतना अपने पूर्वजों के विषय में नहीं। यही तथ्य नाभादास के चरित्र-संचयन के विषय में भी लागू होता है। अन्य भक्तों का विवरण नाभादास ने सुनी-सुनायी बातों के आधार पर दे दिया है।

नाभादास ने सीधे-सादे ढंग से भक्तों के चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका, द्वितीय संस्करण, पृ० ७६२

२. डा० श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली (भूमिका)

है। जो-जो भक्त प्रणयन के समय उनके सम्मुख आते गए उन्हें वे 'भक्तमाला' में पिरोते गये। नाभादास जी ने मलूकदास, धरमदास आदि पहुँचे हुए भक्तों का उल्लेख 'भक्तमाल' में नही किया। इससे यह संदेह होता है कि क्या ये भक्त-कवि नाभादास के समय तक जनता में अधिक प्रसिद्धि न पा सके थे। ध्रुवदास का भी उल्लेख भक्तमाल में नही उपलब्ध होता।

मलूकदास का उल्लेख 'भक्तमाल' में नही मिलता। इसके विषय में राधा-कृष्ण दास का कहना है कि, "भक्तमाल में मलूकदास जी का वर्णन नहीं है, इससे यह विदित होता है कि भक्तमाल बनने के समय मलूकदास जी का उदय नहीं हुआ था, नही तो अवश्य उनका वर्णन होता, क्योंकि एक तो यह नाभा जी के प्रकट से गुरुभाई थे, दूसरे ये बड़े महात्मा थे।"[१] वास्तव में नाभादास और मलूकदास समकालीन थे।[२] फिर यह कैसे मान लिया जाय कि 'भक्तमाल' के बनने के समय मलूकदास का उदय नही हुआ था। मलूकदास का 'भक्तमाल' में उल्लेख नही है। इसका कारण व्यक्तिगत अभिरुचि और सैद्धान्तिक मतभेद प्रतीत होता है, क्योंकि जब मलूकदास भक्तों के चरित्र का गायन 'ज्ञान बोध' मे करने बैठे, तो नाभादास का उल्लेख नही किया।

ध्रुवदास का भी उल्लेख 'भक्तमाल' में नही मिलता। ध्रुवदास और नाभादास एक दूसरे के समकालीन थे।[३] किन्तु फिर भी नाभादास 'भक्तमाल' में ध्रुवदास के लिए मूक है और ध्रुवदास 'भक्तनामावली' में तुलसी जैसे विख्यात कवि के लिए। धरमदास का उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं हुआ। कवि नाभादास के पास भक्तों के नामों की कोई सूची नही रही होगी जिसके आधार पर वह भक्तों के चरित्रों का वर्णन करते। जैसे जैसे उन्हें भक्त-चरित्र याद आते गए होंगे, वैसे वैसे उनके वर्णन भी स्वतः 'भक्तमाल' में आते गए होंगे। अतः कुछ भक्तों का छूट जाना स्वाभाविक ही है।

'भक्तमाल' में कलियुग के भक्तों का जो विवरण मिलता है, वह किसी क्रम को लेकर नहीं चलता। हो सकता है कि जैसे-जैसे नाभादास को 'भक्तमाल' के प्रणयन के समय भक्त स्मृति में आते गए होंगे, वैसे ही वैसे उनका विवरण

---

१. सम्पादक राधाकृष्ण दास: भक्तनामावली, पृ० ९१। (ना० प्रा० स० काशी)

२. H. H. Wilson : Essays & Lectures on the Religion of Hindus.

३. महावीर सिंह गहलोत: भक्तमाल का रचनाकाल, निबंध, पृ० १२७ सम्मेलन पत्रिका, भाग ३५

भी प्रस्तुत करते गए होंगे। 'भक्तमाल' को नाभादास जी ने गोविन्द नामक भक्त को कंठस्थ करवा दिया था जिसका उल्लेख नाभा जी ने 'भक्तमाल' में किया भी है :

'भक्त रत्नमाला' सुधन गोबिंद कंठ बिकास किया।
रुचिर सलिघन नील लील रुचि, सुमति सरित पति।
बिबिध भक्त अनुरक्त व्यक्त, बहु चरित चतुर अति।
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुधि उचारन॥"[1]

इस छप्पय के बाद भी 'भक्तमाल' में अनेक भक्तों का उल्लेख मिलता है। सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर इसमें रचयिता ने अन्य भक्तों का भी विवरण जोड़ दिया है। रचना-क्रम में बड़ी गड़बड़ी दृष्टिगत होती है। अनेक बाद की घटनाएँ पहले छप्पयों में वर्णित हैं और युग की प्रारम्भिक घटनाएँ जिन्हें प्रारम्भ में ही होना चाहिए था, अन्त मे वर्णित है। जैसे कबीरदास का आविर्भाव तुलसीदास जी से पूर्व हुआ था, किन्तु तुलसी का विवरण 'भक्तमाल' में कबीर से पहले उपलब्ध होता है।

'भक्तमाल' में लगभग २०० भक्तों के चरित्रों के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इस भक्तों में रामोपासक, कृष्णोपासक तथा संत-कवियों के विवरण दिये गए है। भक्तों की जीवनी के साथ-साथ नाभादास जी ने व्यक्तित्व-दर्शन का भी संक्षिप्त उल्लेख किया है। उन्होंने भक्तों को भक्त और भक्त-कवि, रूप में चित्रित किया है।

वर्ण्य-विषय

भक्तमाल के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है कि, "इन्होंने भक्तमाल में २०० भक्तों का चमत्कार बोधक चरित्र छप्पय छद मे लिखा है। उपास्य के नाम, रूप, लीला, और धाम सबका इन्होंने वर्णन किया है।"[2] भक्तमाल का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है। मंगलाचरण की प्रथा हमारे साहित्य में बड़ी प्राचीन है। कवि अपने मनोरथ में सफलता प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रार्थना, मंगलाचरण के रूप में ही करता है। संस्कृत-साहित्य में भी ग्रंथ आरम्भ करने के पूर्व मंगलाचरण का विधान है। मंगलाचरण मंगल की कामना का ही द्योतक है। कवि 'मंगलाचरण'

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका

२. वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२-२७३

के माध्यम से भगवान के प्रति अपनी भक्ति-भावना, अपने हृदय की श्रद्धा आदि का प्रदर्शन करता है। अपने कल्याण की कामना के साथ-साथ, वह पाठक तथा श्रोता के कल्याण के लिए भी भगवान की स्तुति करता है। 'मंगलाचरण' के प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं :

(१) नमस्कारात्मक, (२) आशीर्वादात्मक[१]।

सर्वप्रथम 'मंगलाचरण' के रूप में कवि अपने आराध्य की स्तुति अवश्य करता है।

मंगलाचरण की परम्परा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी तक पहुँचती है। शृंगार रस में पूर्णतया 'बूढ़े' हुए कवि बिहारी भी अपने आराध्य की स्तुति करना न भूले और उन्होंने अपनी 'भव-बाधा' को समाप्त कराने की प्रार्थना भगवान कृष्ण से की। विद्यापति भी जीवन भर शृंगार की उपासना करते-करते थक-से गए थे। अंत में भगवान शेष जीवन के लिए प्रार्थना करने लगे कि अब वे उन्हें अपने भक्ति अथवा अपनी कृपा प्रदान करें। राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कवि प्रिथीराज ने भी 'बेलिक्रिसन रुक्मिणी री' के आरम्भ में 'भक्तमाल' के मंगलाचरण से मिलता-जुलता 'मंगलाचरण' लिखा है। कवि ने कहा है कि परमेश्वर, सरस्वती और गुरु को प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि ये हमारे सार-तत्व है। भगवान कृष्ण के मंगलरूप का भी गुणानुवाद करना चाहिए :

"परमेसर प्रणवि प्रणवि सरसति पुणि सतगुरु प्रणवि त्रिण्हे ततसार।
मंगलरूप गाइजै माहव चार सु ए ही मंगल चार॥"[२]

नाभादास ने ग्रंथ के प्रारम्भ में कहा है :

"भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु चतुर नाम वपु एक।
इनके पद बंदन कियै, नाशै विघ्न अनेक॥
मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप।
हरिजन को यश गावते, हरिजन मंगल रूप।"[३]

मंगलाचरण के अनन्तर कवि ने इस तथ्य का भी संकेत किया है कि गुरु से आज्ञा पाकर कवि ने भक्तों का गुणगान करने का निश्चय किया है। साहित्य शास्त्र में एक मान्यता यह है कि वर्ण्य-वस्तु का निर्देश या तो मंगलाचरण में

---

१. आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोवापि
२. पृथीराज : बेलिक्रिसन रुकमिणी री, पृ० १
३. भक्तमाल, पृ० ४३

में ही हो अथवा मंगलाचरण के समाप्त होते ही ऐसा संकेत मिले कि कवि किस वस्तु का वर्णन करने जा रहा है। नाभादास ने मंगलाचरण के साथ ही इसके (वस्तु-निर्देश) संकेत दिये हैं। इसके पश्चात कवि अनेक देवताओं की स्तुति करता है। 'भक्तमाल' में कवि ने जिन चरित्रों का उल्लेख किया है, वे निम्न-लिखित चार प्रमुख भागों में विभाजित हैं :

(१) सत्ययुग के चरित्र
(२) द्वापर के चरित्र
(३) त्रेता के चरित्र
(४) कलियुग के चरित्र

एक अन्य दृष्टिकोण से भी इन चरित्रों को विभाजित किया जा सकता है:

(क) दैवी चरित्र
(ख) मानवी चरित्र

सतयुग, त्रेता और द्वापर के वर्णित चरित्रों को हम देवताओं की श्रेणी में रख सकते हैं, यद्यपि नाभाजी ने स्वयं चरित्रों के वर्णन में ऐसी कोई विभाजन की रेखाएँ नही खींची। कलियुग के भक्तों का भी वर्णन कवि ने बड़े ही श्रद्धा-पूर्वक किया है।

'मंगलाचरण' के पश्चात् कवि देवताओं की वंदना करता है। एक एक छप्पय में कहीं कहीं अनेक देवताओं की बंदना की गयी है और कही कहीं एक ही देवता की वंदना में अनेक छप्पय लिखे गए है। कवि चौबीस अवतारों के चरणों की वंदना करता हुआ कहता है :

"जय जय मीन, बराह कमठ नरहरि बलि बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलंक्की व्यास पृथू हरिहंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत्त कपिलदेव सनकादि करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥

तदनन्तर कवि ने भगवान के (राम) उन पद चिह्नों की प्रार्थना की ह जिनके स्मरण से अनेक पापों का विनाश होता है। भगवान के चरणों में निम्न-लिखित चिह्न है जिनकी कवि ने वंदना की है :

(१) अम्बुज, (२) अंकुश, (३) यव, (४) ध्वज, (५) चक्र, (६) ऊर्ध

रेखा, (७) स्वस्तिक, (८) अष्टकोण, (९) पवि, (१०) बिन्दु, (११) त्रिकोण, (१२) धनु, (१३) अंकुश, (१४) मत्स्य, (१५) शंख, (१६) चन्द्रार्द्ध, (१७) गोष्पद, (१८) घट, (१९) ध्वज, (२०) कुलिश, (२१) अंकुश, (२२) कमल ।

आगे चलकर कवि देवताओं की वंदना प्रारम्भ करता है और निम्नलिखित ३ देवताओं को उसने प्रधानता दी है :—

(१) श्री ब्रह्माजी, (२) श्री नारद जी, (३) श्री शंकर जी ।

इसके पश्चात् इसी छप्पय में बारह महा भक्त राजों का भी उल्लेख किया गया है :

१. श्री सनक जी
२. श्री सनन्दन
३. श्री सनातन
४. श्री सनत्कुमार
५. श्री कपिलदेव जी
६. मनु जी
७. प्रह्लाद जी
८. जनक जी
९. श्री भीष्माचार्य
१०. श्री बलि जी
११. सुकदेव जी[1]

निम्नलिखित सूची उन देवताओं, भक्तों और मुनियों की दी जा रही है जो सत्ययुग, त्रेता और द्वापर मे अवतीर्ण हुए थे । इन समस्त चरित्रों को वदना कवि ने श्रद्धापूर्वक की है ।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर के चरित्र

(१) ब्रह्माजी : सुखदुःखादि प्रारब्ध रेखाओं के तथा सृष्टि के कर्त्ता ।
(२) नारदजी : भगवान राम के अनन्य भक्त ।
(३) शिवजी : सृष्टि के संहारक देवता ।
(४) सनकादि : ब्रह्माजी के पुत्र ।

---

१. **बिधि[1] नारद[2] संकर[3] सनकादिक[4] कपिलदेव[5] मनुभूप[6] ।**
नरहरिदास[7] जनक[8] भीषम[9] बलि[10] सुकमुनि[11] धर्म स्वरूप ॥
अंतरंग अनुचर हरिजू के जो इन कौ जस गावे ।
आदि अंत लौ मंगल तिन को श्रोता बक्ता पावे ॥
अजामेल परसंग यह निरनै परम धर्म[12] को जान ।
इनकी कृपा और पुनि समझै द्वादस भक्त प्रधान ॥"
नाभादास, टीकाकर्त्ता प्रियादास भक्तमाल, पृ० ६५

(५) कपिलदेव : तत्वज्ञाता ।

(६) मनुजी : आदि पुरुष ।

(७) श्री प्रह्लादजी : भगवान के अनन्य भक्त, दास्यनिष्ठा में अग्रगण्य ।

(८) जनकजी : ऋषियों के अधीश्वर, सीता जी के पिता ।

(९) भीष्मजी : आठ वसुओं में से एक बसु के अवतार महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा ।

(१०) श्री बलिजी : धर्म में सतत संलग्न रहने वाले ।

(११) शुकदेवजी : व्यास महराज के पुत्र, भगवद्भक्ति में लीन रहने वाले ।

(१२) धर्मराज ।

(१३) अजामेल जी ।

(१४) श्री लक्ष्मी जी : भगवान विष्णु की पत्नी ।

(१५) श्री पार्षद जी : भक्तों के रक्षक १६ पार्षद में से प्रमुख एक हैं ।

(१६) गरुड़ जी : भगवान का वाहन ।

(१७) श्री हनुमान जी : भगवान राम के दूत, पवन-सुत, अलौकिक कर्मों के करने वाले ।

(१८) श्री जाम्बवान जी : श्री ब्रह्मा जी के अवतार राम तथा सुग्रीव के मंत्री ।

(१९) श्री सुग्रीव जी : सूर्य के पुत्र, भगवान राम के अनन्य मित्र, कपियों के राजा ।

(२०) श्री विभीषण जी : भगवान राम के अनन्य भक्त, लंकेश के भाई ।

(२१) सबरी : भिल्ल जाति में उत्पन्न राम की अनन्य भक्ता ।

(२२) जटायु : पक्षियों का राजा, राम का भक्त, सीता की रक्षार्थ प्राण त्यागे थे ।

(२३) श्री अम्बरीष जी और महारानी : भगवान के भक्त थे, साधुओं का आदर करते थे । बिना अपराध दुर्वासा ऋषि के कोपभाजन बने ।

(२४) विदुर जी : भगवान कृष्ण के भक्त ।

(२५) विदुरानी : भगवान कृष्ण की अनन्य भक्त, महाभारत के युद्ध के पूर्व एक बार कृष्ण विदुर जी के घर गये, विदुरानी स्नान कर रही थीं । कृष्ण का स्वर सुन भावविह्वल वह नग्नावस्था में ही कृष्ण से मिलीं ।

(२६) सुदामा : कृष्ण के सखा, जाति के ब्राह्मण । जन्मजात दरिद्र ।

(२७) चन्द्रहास : केरल देश के राजा का पुत्र, जिसने नारद कृपा से भक्ति प्राप्त की ।

(२८) मैत्रेय ऋषि : भगवान कृष्ण के भक्त थे ।

(२९) अक्रूर जी

(३०) चित्रकेतु : ब्रह्मज्ञानी, पार्वती के श्राप से 'वृत्रासुर' हुआ ।

(३१) उद्धव : कृष्ण के सखा, ब्रह्मज्ञानी ।

(३२) ध्रुव जी : भगवान का अनन्य भक्त ।

(३३) अर्जुन : महाभारत के युद्ध के प्रमुख योद्धा, कृष्ण के अनन्य भक्त ।

(३४) युधिष्ठिर : पांडवों में सबसे बड़े भाई, सत्य और धर्म के साक्षात् अवतार थे ।

(३५) ग्राह : भगवान कृष्ण का भक्त ।

(३६) कुन्ती जी : कृष्ण की भक्ति में तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण कर दिया था ।

(३७) द्रौपदी : परम सती, पांडवों की पत्नी, भगवान की अनन्य भक्त जिसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि चीरहरण के समय भगवान ने मदद की ।

(३८) श्रुतिदेव जी : भगवान कृष्ण श्रुतिदेव के घर एक दिन पधारे दर्शन-मात्र से भगवान के अनन्य भक्त बन गए ।

(३९) योगीश्वर ·

(४०) राजा अंग जी : बिठुर निवासी, धर्मात्मा थे ।

(४१) राजा मुचुकुन्द जी : अयोध्या के राजा, देवताओं के युद्ध में बड़ी सहायता की और थक कर एक पर्वत की कंदरा में विश्राम कर रहे थे। श्री कृष्ण भगवान 'कालयवन' नामक दैत्य का पीछा करने से भागते हुए उसी गुफा में आ छिपे और अपना पीताम्बर मुचुकुन्द जी के शरीर पर ओढ़ा दिया। कालयवन इन्हीं को कृष्ण समझ कर गालियाँ देने लगा । मुचुकुन्द जी के नेत्र खोलते ही कालयवन मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

(४२) प्रियव्रत जी : मनु के पुत्र, भक्त थे ।

(४३) राजा पृथु जी : भगवत् भक्ति में तल्लीन रहते थे ।

(४४) परीक्षित : हस्तिनापुर के राजा, अर्जुन के पोता थे ।

(४५) शेष जी : भगवान की क्षीर सागर में शयन के निमित्त शय्या बने थे।

(४६) सूत जी : पुराणादि के कीर्तनकार।

(४७) शौनक : पुराणादि के अट्ठासी सहस्र श्रोताओं में प्रमुख थे।

(४८) प्रचेता : नारद के उपदेश से भगवान के दर्शन इन्हें हुए थे।

(४९) श्री सतरूपा जी (कौशल्या जी) : सुरपुर मे बसने के पश्चात् सतरूपा जी कौशल्या जी के रूप में अयोध्या में माता (राम की) के रूप मे प्रतिष्ठित हुई।

(५०) प्रसूती जी : मनु जी की कन्या, दक्ष की धर्म-पत्नी, भक्ति परायणा।

(५१) श्री आकूती जी : प्रियव्रत जी की भगिनी थी।

(५२) देवहूती जी : स्वयं कपिल जी की माता, देवी द्वारा उपदेश प्राप्त किया था।

(५३) सुनीति जी : उत्तानपाद की धर्मपत्नी, भक्त ध्रुव की माता थी।

(५४) मन्दालसा : भक्त हृदय और पतिपरायणा थी।

(५५) सती जी (उमा जी) : दक्ष सुता, शंकर की अर्धांगिनी।

(५६) यज्ञ पत्नी (मथुरानी चौबाइन) : कृष्ण तथा उनके सखाओं की भक्ति में संलग्न सभी मर्यादाओं का उल्लंघन कर गई थी।

(५७) गोपिकावृन्द : कृष्ण के प्रेम मे अनुरंजित गोपिकाएँ। कवि नाभादास इन समस्त भक्तों के चरणों की धूल में तथा रंगीली भक्ति में रम जाना चाहते हैं।

(५८) महर्षि वाल्मीकि जी : आदि कवि, भगवान राम ने स्वयं आपके आश्रम में जाकर दर्शन दिये थे। राम की लीलाओं का महर्षि ने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक गान किया था।

(५९) प्राचीन बर्हिजी : इनके कई सहस्र पुत्र थे। नारद की कृपा से भगवान की भक्ति प्राप्त कर गोलोकवासी हुए।

(६०) सत्यव्रत जी : श्री भगवत् की 'मीन' अवतार इन्हीं की अंजली से प्रकट हुए थे।

(६१) राजानीलध्वज : कृष्ण का भक्त, इनके पुत्र ने अर्जुन के अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया था।

(६२) रहूण जी : भक्त राजा थे। 'जड़भरत' और 'रहूण' का संवाद श्रीमद्-भागवत के पाँचवें स्कंध में वर्णित है।

(६३) श्री सगर जी : राजा सगर को उनकी सौतेली माँ ने गर्भ में ही विष दे दिया था, किन्तु भगवान की कृपा से बच गए। भगवान राम के वंश के प्रथम पुरुष थे।

(६४) भगीरथ : राम के वंशज।

(६५) भरत जी : पिता का नाम ऋषभ देव था। समस्त भारत के सम्राट थे।

(६६) दधीचि जी : दानशिरोमणि दधीचि ने असुर के बध के लिए अपनी पीठ की हड्डी दे डाली थी। भगवान का बड़ा भक्त था।

(६७) रघु जी : अयोध्या के प्रतापी महाराज थे।

(६८) भारद्वाज जी : भगवान राम के भक्त। इन्हीं के अतिथि भरत जी हुए थे। 'प्रयाग' में भारद्वाज का प्रसिद्ध आश्रम बना है।

(६९) शुकदेव जी : इसके पूर्व भी शुकदेव जी का विवरण दिया जा चुका है।

(७०) वशिष्ठ जी : 'बड़ वशिष्ठ सम को जग माँही', ब्रह्माजी के पुत्र थे।

(७१) अत्रि अनसूया : अत्रि ब्रह्माजी के पुत्र थे। अनसूया अपनी पत्नी सहित चित्रकूट में तप किया था।

(७२) विश्वामित्र : विश्वामित्र की तपस्या तीनों लोकों में विख्यात है।

(७३) दुर्वासा : अत्रि के पुत्र, शाप देने में प्रवीण थे।

(७४) याज्ञवल्क्य जी : बड़े प्रतापी मुनि थे। सूर्य से विद्या पढ़ी थी।

(७५) जाबालिक : अवधेश के मंत्रियों में से थे।

इन समस्त मुनियों, भक्तों की वदना करने के पश्चात् नाभादास ने १८ महा-पुराणों की स्तुति की है तथा १८ स्मृतियाँ जिन महानुभावो ने कही थी, उनके चरण-कमलों की स्तुति की गई है। तदुपरान्त 'राम के मंत्रियों' में कवि ने एक एक की वंदना की है। उनका क्रम इस प्रकार है :

(७६) श्री धृष्टि जी। (७७) श्री जयन्त जी।

(७८) श्री विजय जी। (७९) श्री राष्ट्रबर्धन।

(८०) श्री सुराष्ट्र जी। (८१) श्री अशोक जी।

(८२) श्री धर्मपालक जी। (८३) श्री सुमंत्र जी।

कवि के कथनानुसार इन मंत्रियों का स्मरण करने मात्र से भगवान राम प्रसन्न हो जाते है। इसके पश्चात् कवि कुछ राम के सखाओं के नामों का उल्लेख करता है। राम के प्रमुख सखा ये है :

(८४) श्री सुग्रीव जी। (८५) हनूमान जी। (८६) अंगद आदि।

इन सखाओं से कवि कृपा की भिक्षा की याचना करता है। आगे चल कर कवि कृष्ण के सखाओं, गोपिकाओं आदि का विवरण प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात् सप्त द्वीपों के भक्तों की प्रशंसा करता है, जम्बू द्वीप के भक्तों की स्तुति करता है। हरि-मंदिर के द्वारपाल अष्ट-कुल-नागों की वंदना करना भी कवि नहीं भूलता। अष्टकुल-नागों के प्रशंसात्मक वर्णन से ही कवि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि के भक्तों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है। इसी स्थल से कलियुग के भक्तों के चरित्र प्रारम्भ होते हैं। 'भक्तमाल' के पूर्वार्ध में जो चरित्र वर्णित है, उनकी स्तुति और वंदना कवि ने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक की है। यह संक्षेप में उन चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में अवतरित हुए थे। लेखक ने केवल प्रमुख चरित्रों का ही विवरण दिया है। समस्त चरित्रों की संख्या अधिक है, लगभग १७५ के होगी। अतः उन सभी चरित्रों का विवरण न देकर केवल कुछ प्रमुख व्यक्तित्वों का विवरण देकर ही संतोष करना पड़ता है।

कलियुग के चरित्र

इसके पूर्व भी इस बात का सकेत किया जा चुका है कि 'भक्तमाल' में वर्णित कलियुग के भक्तों में किसी प्रकार का क्रम नही पाया जाता। क्रमबद्धता न मिलने का कारण यह हो सकता है कि भक्तमाल सबसे पहले गोबिन्द 'भक्तमाली' द्वारा कंठस्थ की गई थी, और लोकप्रियता बढ़ने पर इसे लिपिबद्ध किया गया होगा। ऐसी स्थिति में गोबिन्द द्वारा हेर-फेर हो जाना भी सम्भव है। कलियुग के प्रारम्भ के चरित्र अन्त में और कलियुग के अन्त में आविर्भूत होने वाले चरित्र ग्रंथ के प्रारम्भ में दृष्टिगत होते हैं। इस क्रम की विच्छिन्नता के लिए स्वयं नाभादास भी क्षमा याचना करते हैं :

"श्रीमूर्ति सब वैष्णव लघु, दीरघ गुणनि अगाध।
आगे पीछे बरन ते, जिनि मनौ अपराध॥"

हो सकता है कि नाभादास भी क्रमबद्धता के लिए अधिक सजग न रहे हों। इस प्रकार 'भक्तमाल' एक ऐसा ग्रंथ है जो समय समय पर पुष्ट होता रहा।

कलियुग के सभी चरित्र मानवीय हैं। उन्हें देवताओं की कोटि में नहीं रखा जा सकता। किन्तु यह भक्त अपनी भक्ति और साधना से इस मानवता के संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण कर चुके थे। यही कारण है कि कवि ने यत्र-तत्र भक्तों के चरित्रों में अलौकिकता का पुट दे दिया। यथार्थ में इन भक्तों के लिए कुछ भी कठिन अथवा असम्भव नहीं है, कारण कि उनकी सहायता के लिए भगवान स्वयं

तत्पर रहा करते हैं। पीपा, धना आदि संतों के चरित्रों में अलौकिकता के दर्शन होते हैं। पीपा ने नरभक्षक बाघ को दीक्षा दी थी।[1] धना जी के क्षेत्र में बिना बोये हुए ही फसल उत्पन्न हुई थी।[2] वास्तव में यह भक्त भगवान के दूसरे रूप हुआ करते हैं।

कलियुग के भक्तों में, रामोपासक, कृष्णोपासक और निर्गुण-पंथी, सभी कोटि के भक्त 'भक्तमाल' में वर्णित हैं। रामोपासक कवियों में नाभादास ने 'तुलसी', कृष्णोपासक में सूर, मीरां और निर्गुणियों मे कबीर के चरित्र पर अधिक दृष्टि रखी है। कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास ने इन प्रमुख कवियों का वर्णन बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति के साथ किया है।

'श्रद्धा' और 'भक्ति' के स्थूल रूप से आधार पर विशेष माने जा सकते हैं। श्रद्धा का पात्र सामान्यतः वही हो सकता है जिसमें अनेक अनुकरणीय गुणों का समन्वित रूप आकर केन्द्रित हो गया हो। 'श्रद्धा तभी जन्म लेती है, जब हम किसी विशेष व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। 'श्रद्धा' के अंकुरित होने के लिए बीज बोने की आवश्यकता होती है, किन्तु भक्ति के बीज हृदय में विद्यमान रहते हैं, अवकाश पाकर वे अंकुरित हो जाते हैं। 'श्रद्धा' बौद्धिक भित्ति पर आधारित है, भक्ति का सम्बंध हृदय से है, वह हमारे संस्कारों से सम्बद्ध है।

'भक्तों' के चरित्रांकन में कवि नाभादास के हृदय की श्रद्धा और भक्ति सर्वत्र दृष्टिगत होती है। नाभादास की दृष्टि में सभी भक्त पूज्य और सम्मान के पात्र थे। भेद-भाव नामक कोई भी वस्तु नाभादास को छू तक न गई थी। कबीर, धना, तुलसी, सूर, आदि सभी भक्तों के चरित्र को कवि ने एक ही साँचे में ढाला है। जहाँ एक ओर नाभादास ने धना के 'भजन' को 'धन्य' कहा, वहाँ दूसरी ओर सूरदास के 'कवित्त' की भी प्रशंसा की। अपने गुरु अग्रदास की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि, "अग्रदास ने हरि के भजन के अतिरिक्त व्यर्थ में समय नहीं नष्ट किया।"[3] कवि केशव भट्ट की प्रशंसा करता हुआ उन्हें पापों के नाश करने वाला तक घोषित किया है। केशव भट्ट को मनुष्यों

---

१. "पीपा प्रताप जग बासना, नाहर कौ उपदेश दियौ।...", (भक्तमाल)

२. धन्य धना के भजन को, बिनहि बीज अंकुर भयौ।" (भक्तमाल)

३. "(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काल वृथा नहिं वित्तयो...."

(भक्तमाल)

का मुकुट-मणि कह कर कवि ने अपने हृदय की श्रद्धा को साकार रूप प्रदान किया है :

"केशौ भट" नर मुकुटमणि, निज की प्रभुता बिस्तरी ॥
"काश्मीरि" की छाप, पाप तापनि जग मंडन ।"[१]

चरित्रों के वर्णन मे नाभादास जी का एकांगी दृष्टिकोण सम्पूर्ण 'भक्तमाल' में कुहासे की भाँति छाया हुआ है । कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास जी भक्तों की प्रशसा तक ही अपने को सीमित रख सके जिसका परिणाम यह हुआ कि, "वृत्तान्त अत्यन्त अपूर्ण और भक्तो के केवल महिमा सूचक"[२] रह गए ।

कवि ने भक्त चरित्रो के अन्य पक्षों को न लेकर केवल उन्हीं पक्षों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है जो भक्त को जनता के मध्य स्थायित्व प्राप्त कराने में सहायक हुए है । कुछ भक्तों के चरित्रों को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने अनेक प्रकार की यौगिक प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया है । कृष्णदास पयोहारी जी के चरित्र में यौगिक प्रक्रियाओं का समावेश कवि ने किया है ।

कवि भाव का अनुगामी होता है, तथ्य को यथातथ्य प्रस्तुत करने वाला इतिहासकार नही होता । नाभादास कवि थे, कवि होने के नाते उन्हें वस्तु-वर्णन में कल्पना का सहारा लेना पड़ता है । यही कारण है कि कवि नाभादास ने भक्तों का यथातथ्य वर्णन न करके, अतिरंजना का सहारा लिया है। अतिरंजना से पूर्ण अलौकिकता की छाप लिये हुए ये भक्त चरित्र सदैव मानव को भक्ति-मार्ग पर चलने के लिए अनुप्राणित करते रहेगे ।

सर्वप्रथम नाभादास ने चार प्रमुख सम्प्रदाय के प्रवर्तकों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं :

"रमा पधति रामानुजा विष्नुस्वामी त्रिपुरारि ।
निंबादित्य सनकादिका, मधुकर गुरु मुख चारि ॥"[३]

(१) **श्री निंबादित्य :** निम्बार्क सम्प्रदाय वैष्णवों का प्रमुख सम्प्रदाय है । इसके प्रवर्तक निम्बार्क स्वामी थे । निम्बार्क स्वामी भक्ति और ज्ञान के भंडार थे । निम्बार्क स्वामी दक्षिण में 'गोदावरी गंगा' के तट मुगेर नामक ग्राम के

---

१. नाभादास : भक्तमाल

२. डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९

३. नाभादास-कृत भक्तमाल, पृ० ५ (कल्याण भक्त चरितांक में प्रकाशित)

निवासी थे । पिता का नाम अरुण तथा माता का नाम जयंती था । महाराष्ट्री ब्राह्मण थे । निम्बार्क स्वामी के अनुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान है और उनका सगुण भाव ही है ।

(२) **श्रीरामानुज :** स्वामी रामानुज के विषय में कवि ने दो छप्पय लिखे हैं । उसमे से प्रथम छप्पय का आशय दिया जा रहा है "श्री सिन्धुजा नाम (श्री लक्ष्मी जी) महारानी जी का सम्प्रदाय, सब सम्प्रदायो का शिरोमणि और संसार-ताप से बचने के निमित्त भक्ति के मडप का चँदोआ रचा हुआ है । श्री श्री जी महारानी से, श्री विष्वकसेन जी, भगवत्पार्षद, फिर उनसे पुण्यपुज मुनिवर्यनम्रता, नीतिशील 'श्री शठकोप' जी, श्री 'वोपदेव' जी कि जितने श्रीमद्भागवत रूपी लुप्त मक्खन का उद्धार किया, मंगल स्वरूप, 'श्री नाथ मुनि' जी तथा परम यशस्वी श्री 'पुडरीकाक्ष' जी, भक्ति रस के राशि श्री, 'राममिश्र' जी, श्री परांकुश जी जिनका प्रताप प्रकट है, स्वामी श्री 'यामुनाचार्य' तथा भाष्यकार स्वामी अनन्त श्री रामानुजा जी जो संसार के मोहांधकार हरने वाले सूर्य उदय हुए ।"[१]

दूसरे छप्पय में भी कवि ने अनेक प्रकार से रामानुज जी की प्रशंसा की है ।

(३) **श्री विष्णु स्वामी** : ये दक्षिण देश मे, ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए तथा भगवान के बालरूप के उपासक थे ।

(४) **श्री मध्वाचार्य :** "पहिले भगवत् ने यह (माध्व) सम्प्रदाय ब्रह्माजी को उपदेश किया । फिर इसका प्रचार श्री मध्वाचार्य स्वामी जी से हुआ ।"[२]

(५) **गोस्वामी तुलसीदास :** नाभादास जी सम्भवतः तुलसी से अधिक प्रभावित थे । अतः तुलसी को 'भक्तमाल' का 'सुमेरु' भी कहा है । तुलसी के विषय में जो सामग्री 'भक्तमाल' में दी गई है उसका विवरण इस प्रकार है :

"कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीक 'तुलसी' भयौ ॥
त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन ।
इक अच्छर उद्धरैं ब्रह्म इत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन रस भक्त रटत अह निसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक 'तुलसी' भयौ ।"

---

१. प्रियादास : भक्तमाल टीका, पृ० २६७-६८ (द्वितीय कृति)
२. वही, पृ० २७६

उपर्युक्त छप्पय में कवि ने तुलसी को बाल्मीकि का अवतार माना है। तुलसी का 'मानस' इस कलियुग के अज्ञानरूपी भवसागर से पार होने के लिए ज्ञान रूपी नौका के समान है।

(६) **सूरादास :** वैसे तो कवि ने भक्तमाल में चार 'सूरो' का विवरण दिया है, किन्तु इस स्थल पर भक्तप्रवर कृष्णोपासक उन्हीं सूर का विवरण दिया जा रहा है जिनके प्रकाश से आज साहित्य का प्रांगण प्रकाशमान है। 'सूर' के विषय में 'भक्तमाल' में यह छप्पय दिया हुआ है :

"सूर कबित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै ॥
उक्ति, ओज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी ॥
बचन प्रीति निर्बाह, अर्थ अद्‌भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिबि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन श्रवननि धरै।
'सूर' कबित सुनि कौन कबि, जो नहिं सिर चालन करै ॥"

वास्तव में सभी सूर के काव्य का आस्वादन कर रसमग्न होकर प्रशंसा से शीश को हिलाने लगते हैं। सूर के काव्य में अनेक गुण हैं। कविता के तुकों में अद्‌भुत अर्थ भरा है।

अग्रदेव जी

अपने गुरु अग्रदास के विषय में नाभादास ने कहा है कि अग्रदास ने भगवान के भजन के बिना किसी भी कार्य में व्यर्थ के लिए समय नहीं व्यतीत किया। अग्रदास की जिह्वा से 'श्री सीताराम' निर्मल नाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारित हुआ करता था कि जैसे कोई अलौकिक आनन्द का मेघ मधुर-मधुर शब्द करके बरसता है। नाभादास द्वारा 'भक्तमाल' में प्रस्तुत किया गया छप्पय यहाँ उदाहरण स्वरूप रखा जा रहा है :

"(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन, काल बृथा नहिं वित्तयो ॥
सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये।
सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये ॥
प्रसिध बाग सो प्रीति सुहृथ कृत करत निरन्तर।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धारा धर ॥

(श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्ति, दत्त, मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो ॥"[१]

स्वामी श्री शंकराचार्य

शंकराचार्य के विषय में एक छप्पय दिया गया है जिसमें उनके चारीत्रिक गुणों का उल्लेख किया गया है। नाभादास ने शंकराचार्य को "कराल कलियुग में अधर्म और अधर्मियों से धर्म को अर्थात् वर्ग-धर्म, आश्रम-धर्म तथा भागवत्-धर्म को पालन-रक्षण करने"[२] वाला सुभट उत्पन्न व्यक्तित्व माना है। शंकराचार्य ने अनेक विधर्मियों को धर्म में प्रवृत्त किया। शंकराचार्य जी दक्षिण में उत्पन्न हुए थे। वेदों के ज्ञाता थे तथा भगवान शंकर की शंकराचार्य पर विशेष कृपा थी :

"कलियुग धर्मपालक प्रगट आचारज शंकर सुभट ॥
उतश्रृंखल अज्ञान जिते अनईश्वरवादी।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी ॥
विमुखनि को दियो दंड, ऐंचि सन्मार्ग आने।
सदाचार की सींव विश्व कीरतिहिं बखाने ॥
ईश्वरांश अवतार महि, मरजादा माँड़ी अघट।
कलियुग धर्मपालक आचारज शंकर सुभट ॥"[३]

उपर्युक्त छप्पय से एक बात और स्पष्ट होती है कि जितने भी अनीश्वरवादी, जैन, बुद्ध, धर्म विमुख थे, उन्हें यथा योग्य दंड देकर पुनः वैदिक धर्म के सन्मार्ग पर शंकराचार्य ले आये थे।

पयहारी श्री कृष्णदास

कृष्णदास जी ने अन्न को त्याग कर दूध पीना ही प्रारम्भ किया था जिसको जो कुछ दे देते थे उससे कभी कुछ लेते नहीं थे। कृष्णदास जी राजस्थान के दातिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे।[४] कृष्णदास जी ने रामानन्द सम्प्रदाय

---

१. प्रियादास कृत भक्तमाल टीका, पृ० ३१८
२. प्रियादास : टीका, पृ० ३२२-२३
३. प्रियादास : भक्तमाल टीका, पृ० ३२३
४. "निर्वेद (क) अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो।
जाके सिर कर धर्यो, तासु कर तर नहिं अड्ड्यो।
अर्प्यो पद निर्वान (ख) सोक निर्भय करि छड्ड्यो ॥

की पहली गद्दी राजस्थान में योगियों को चमत्कारों द्वारा पराजित करके स्थापित की थी। "पयोहारी जी ने आग की धूनी को अपनी लँगोटी में उठा लिया था, योगियों के महंत को गधा बना दिया था और उनके प्रभाव से योगियों की मुद्राएँ अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्र हो गई थी।"[१]

नन्ददास जी

नन्ददास एक प्रसिद्ध और पहुँचे हुए भक्तकवि हो चुके हैं। नन्ददास अष्ट-छाप के कवियों में अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रमुख कीर्तनकार थे। इनकी सगीत-लहरी के प्रवाह मे भक्तगण सहज में ही तन्मय हो जाया करते थे। 'भक्तमाल' में जो छप्पय नन्ददास के विषय में दिया गया है, उससे निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :

(१) रसिक जीव थे।

(२) भगवान की लीला के गान करने में अति प्रवीण थे।

(३) रामपुर के निवासी थे, चन्द्रहास के अग्रज, सहृदय थे।

(४) उत्तम ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होने पर भी भगवत् भक्तों के चरण-रेणु के उपासक थे।[२]

तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता (ग)।
सेवत चरण सरोज राय राना मुविजेता (घ)॥
दाहिमा वंश दिनकर उदय, संत कमल हिय सुख दियो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो॥"

(प्रियादास कृत टीका 'भक्तमाल')

उपर्युक्त छप्पय में प्रयुक्त कठिन शब्दों का अर्थ इस प्रकार है :

(क) निर्वेद : वैराग्य
(ख) निर्वान : मोक्ष
(ग) ऊरधरेता : जो अपने वीर्य को ब्रह्मांड में पहुँचा ले।
(घ) भुविजेता—पृथ्वी को जीतने वाला

१. (लेख-रामानन्द सम्प्रदाय में योग डा० बद्री नारायण श्रीवास्तव) रसिक प्रकाश भक्तमाल

२. (श्री) नन्ददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे॥
लीलापद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस, उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्तपद रेनु उपासी॥

मीरांबाई

मीरां कृष्ण भक्ति में इतना तन्मय और उन्मत्त थीं कि उन्होंने लोक-लाज की अवहेलना की थी। मीरां के भक्ति-मार्ग में अनेक दुष्ट-जन रोड़ों के सदृश आये, किन्तु भगवान की भक्ति के सम्मुख उन्हें भी नतमस्तक हो जाना पड़ा। दुष्टों ने मृत्यु के लिए विष दिया जिसे मीरां ने अमृत की भाँति ही पी लिया और उनकी कोई हानि न हुई।[1]

संत कवि

'भक्तमाल' में अनेक भक्तों और संतों के चरित्रों का विवरण दिया गया है। 'संत' और 'भक्त' में कोई विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु फिर भी दोनों की अपनी पृथक्-पृथक् परम्पराएँ और साधना-पद्धतियाँ थीं। दोनों के मार्ग एक ही स्थान (केन्द्र-बिन्दु) पर मिलते थे। 'भक्त' और 'संत' दोनों परम तत्व (ब्रह्म) के जिज्ञासु थे। 'संत' शब्द आज सज्जन, 'साधु' आदि के लिए प्रयोग में आता है, किन्तु किसी समय 'संत' शब्द उन्ही भक्तों के लिए प्रयुक्त होता था "जो विट्ठल अथवा बारकरी सम्प्रदाय के मुख्य प्रचारक थे। इनकी साधना का आधार मुख्य-तया निर्गुण-भक्ति थी।.... प्रो० रानाडे के मतानुसार कालान्तर में 'संत' शब्द रूढ़ि-सा बन गया और इस शब्द का प्रयोग केवल उन्ही व्यक्तियों के लिए सीमित हो गया जो विट्ठल-सम्प्रदाय के अनुयायी थे।"[2]

वास्तव में 'संत' शब्द 'सत्' शब्द का बहुवचन-सा प्रतीत होता है। जिसे 'सत्यानुभूति' हुई हो उसे 'संत' शब्द द्वारा सम्बोधित किया जा सकता है।[3]

चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे।
(श्री) नन्ददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे॥"

१. लोक लाज कुल-शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलिजुगहिं दिखायौ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ॥
दुष्टिनि दोष बिचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ।
बार न बाँको भयौ, गरल अमृत ज्यौं पीयौ॥
भक्ति-निसान बजाय कै, काहू ते नाहिंन लजी।
लोक-लाज-कुल-शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी॥"

नाभादास : भक्तमाल

२. डा० त्रि० ना० दीक्षित : संत दर्शन, पृ० १

३. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : योग प्रवाह, पृ० १५८

'भक्तमाल' में नाभादास ने जहाँ अनेक भक्तों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है, वहाँ कुछ प्रमुख संतों के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है। साम्प्रदायिक भेद-भाव से परे, नाभादास ने पूर्ण श्रद्धा के साथ संतों के चरित्रों को 'भक्तमाल' में स्थान दिया है। फिर भी कुछ संत अनजाने अथवा सैद्धान्तिक मतभेद के कारण 'भक्तमाल' में स्थान न पा सके। 'भक्तमाल' यद्यपि संतमाला है, और संतों की परम्परा के अनुसार उसमें बाबा फ़रीद और दूसरे संतों का भी नाम होना चाहिए। यह कमी होते हुए भी यह तो हम देखते हैं कि संतों की महिमा वर्णन करने वाली इस पुस्तक में भारत के अनेक जातियों, कुलों और देशों में पैदा हुए संतों के प्रति दिल खोलकर श्रद्धांजलि दी गयी है।"[१]

'भक्तमाल' में कुछ प्रमुख संतों का उल्लेख किया गया है। कबीर, रैदास, पीपा आदि के चरित्रों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अब प्रत्येक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

रैदास

रैदास संतों की परम्परा रूपी शृंखला के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। संतों को भौतिक और लौकिक सम्बंध अधिक प्रभावित न कर सके थे। अतः इन महात्माओं ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेद-भाव को सारहीन बतलाया। इसके अतिरिक्त ये संत कुलीन परिवारों के न होकर निम्न परिवारों के थे।

जो छप्पय रैदास के विषय में 'भक्तमाल' में उपलब्ध होता है उससे रैदास के विषय में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती है :

(क) विमल वाणी वाले सदाचार आदि में मग्न

(ख) विवेकी

(ग) भगवान की भक्ति में लीन रहने वाले

(घ) इसी कारण परमगति को प्राप्त कर भवजाल से छूटे।

रूपकला जी ने रैदास के विषय में लिखा है कि रैदास का जन्म चमार-कुल में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि पूर्व जन्म में रैदास ब्रह्मचारी रूप में रामानन्द जी के पास रहते थे। प्रतिदिन भिक्षा माँग कर लाते थे और उसी से भगवान का प्रसाद लगाया करते थे। एक दिन वर्षा अधिक हो रही थी। अतः वह ब्रह्मचारी समीप से ही एक बनिये के यहाँ से भिक्षा माँग लाया। भोग के समय महराज रामानन्द ने पूछा कि भिक्षा कहाँ से लाया है। ब्रह्मचारी ने

---

१. राहुल सांकृत्यायन : भूमिका—संत दर्शन।

उत्तर दिया कि समीप के बनिये के यहाँ से लाया हूँ। वह बनिया एक चमार के साथ कारबार करता था। रामानन्द जी ने तत्काल श्राप दिया कि तू दूसरे जन्म में चमार के यहाँ जन्म ले।" इसी श्राप के कारण रैदास जी को पुनः चमार के घर में जन्म लेना पड़ा।[1]

कबीर

कबीर जैसे निराले व्यक्तित्व के विषय में 'भक्तमाल' में केवल एक छप्पय ही उपलब्ध होता है। कवि ने कबीर के विषय में निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया है :

(क) कबीर ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध किया।

(ख) भक्ति से विमुख जीवों (मनुष्यों) को भक्ति मार्ग पर लगाया।

(ग) कर्मकांड की घोर निन्दा की।

(घ) हिन्दू मुस्लिम, दोनों में ऐक्य स्थापना की चेष्टा की।[2]

कबीर ने निष्पक्ष भाव से भगवान के भजन का उपदेश किया था। बाह्याडम्बरों की आलोचना भी कबीर ने खूब की थी।

पीपा

पीपा जी के विषय में इस प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है :

"पीपा प्रताप जग बासना नाहर कौं उपदेश दियौ॥
प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन कौं धायो।
सत्य कह्यो तिहिं शक्ति, सुदृढ़ हरिशरण बतायो॥

---

१. रूपकला : भक्तिसुधा स्वाद तिलक

२. (३२७) छप्पय (५१६)

"कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो।
जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान, 'रमैनी, शबदी, साखी'।
पक्षपात नहिं बचन, सबही के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिंन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥"

प्रियादास कृत भक्तमाल टीका

श्री रामानंद पद पाइ, भयौ अति भक्ति की सीवाँ ।
गुण असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रीवाँ ॥
परसि प्रणाली सरस भई, सकल विश्व मंगल कियौ ।
पीपा प्रताप जग बासना नाहर कों उपदेश दियो ॥"[1]

उपर्युक्त छप्पय के आधार पर पीपा के विषय में जिन प्रमुख तथ्यों की जानकारी होती है वे इस प्रकार है :

(१) पीपा का प्रताप जगत-विदित है और सुयश सर्वत्र व्याप्त है ।

(२) नर भक्षक व्याघ्र (वासना नाहर---व्याघ्र जिसको बहुत दूर से मनुष्य आदि की गंध ज्ञात हो जाती थी) को पीपा ने उपदेश दिया था ।

(३) भवानी (देवी) के उपासक थे, किन्तु देवी की आज्ञा से हरिभक्त हो गए और रामानन्द को गुरु बनाया ।

(४) रामानन्द के शिष्य होने के पश्चात् पीपा में अनेक गुणों का विकास हुआ और गुणों के समूह हो गए ।

(५) पीपा की भक्ति प्रणाली अत्यन्त सरल और मगलमय थी ।

धना

धना जी उदार हृदय और पहुँचे हुए भक्त थे । भक्तों का आदर-सत्कार करना इन्होंने अपना परम और प्रथम कर्तव्य बना रखा था । एक बार धना के घर अनेक साधु आये और धना ने उन्हें वह समस्त अन्न खिला दिया जो खेत में बोने के लिए रखा था । माता, पिता के भय से खेत में बिना बीज पड़े ही दुबारा (लांगूल) हल चलवा दिया जिससे लोग यही समझें कि खेत बोया जा चुका है । भगवान की कृपा से बिना बोये हुए खेत मे फसल उग आयी ।[2]

---

१. भक्तमाल, पृ० ४९४

२. **"धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥**
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवायो ।
तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये ॥
आसपास कृषिकार खेत कर करत बड़ायी ।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पायी ॥
अचरज मानत जगत में कहुँ निपुज्यो, कहुँवै बयौ ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥"
(भक्तमाल, पृ० ५२८)

चरित्र-वर्णन का आधार

(क) कथाएँ

(ख) प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का आधार

(ग) समसामयिक भक्तों के वर्णन में कवि का अपना स्वयं का ज्ञान

'भक्तमाल' में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के अनेक चरित्र वर्णित हैं। क्या कवि के पास इस प्रकार की कोई क्रमबद्ध सामग्री थी जिसके आधार पर उसने 'भक्तमाल' की रचना की ? यह प्रश्न अत्यन्त संदिग्ध है। प्रमाण के अभाव में इस प्रश्न के विषय में कुछ भी नही कहा जा सकता।

(क) **कथाएँ** : चरित्र वर्णन में कवि ने सम्भवतः जन-सामान्य में प्रचलित कथाओं का भी सहारा लिया है। कुछ चरित्र तो ऐसे है जो काल्पनिक हैं, अपना कोई अस्तित्व नही रखते, उनका भी विवरण 'भक्तमाल' में उपलब्ध होता है। ऐसे चरित्रो के वर्णन की आधार-शिला प्रचलित कथाओं पर ही आधारित है।

(ख) **प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का आधार** : 'भक्तमाल' का आद्योपांत अध्ययन करने के पश्चात् ऐसा आभास मिलता है कि कवि को प्राचीन साहित्य का अच्छा ज्ञान था। अनेक अवतारों का वर्णन इसी कोटि मे आता है। कवि ने ऐसे चरित्रों का केवल नाम ही दिया है, उनके विषय में अधिक कुछ कहा नहीं।

(ग) **समसामयिक भक्तों के वर्णन में कवि का स्वयं का ज्ञान** : कवि ने लगभग २०० भक्तो के चरित्रों का वर्णन किया है जिन्हें कलियुग के भक्तों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमे कुछ भक्त ऐसे है जो नाभादास के समकालीन थे और कुछ ऐसे भक्त है जो उनके पूर्व के है। शंकराचार्य, रामानुज आदि नाभादास के पूर्व आविर्भूत हुए थे। अष्टछाप के कवि तथा तुलसीदास नाभादास के समकालीन थे। इन भक्तो के विषय मे कवि ने जो कुछ भी कहा है वह उसके स्वतः अनुभव का साक्षात् प्रमाण है। इन भक्तों को कवि ने जैसा देखा था, उसी रूप में प्रस्तुत किया।

कलियुग के भक्तों के वर्णन मे क्रम नही मिलता। तुलसीदास के पश्चात् कबीर, दादू आदि का उल्लेख भक्तमाल में मिलता है। 'भक्तमाल' मे क्रम के न मिलने का कारण भी स्पष्ट है। गोविन्द भक्तमाली को नाभादास ने भक्तों के चरित्रो को कठस्थ करवा दिया था और सम्भवतः कलियुग के भक्तों के चरित्रों का संकलन नाभादास के समय में गोविन्द भक्तमाली ने किया था। कलियुग के भक्तों के वर्णन मे क्रम न होने का यही प्रमुख कारण है।[1]

---

१. **महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचना-काल (निबंध)**

किसी भी देश अथवा समाज में महान् साहित्य तथा साहित्यकार के आविर्भाव के कुछ निश्चित कारण हुआ करते है। इनमें एक यदि युग-चेतना के प्रतिनिधित्व का दावा करता है तो दूसरा युग-चेतना का साक्षात् प्रतीक हुआ करता है। किसी विद्वान ने कहा है कि युग की महान् विभूतियाँ काल-प्रसूत हुआ करती हैं। काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती है।[1] साहित्यकार, समाज, देश, जनजीवन का नेता हुआ करता है। उसका साहित्य जनता के भावों का सच्चा, जीता-जागता स्वरूप होता है। नाभादास का 'भक्तमाल' एक संदेश, भावना विशेष को लेकर जनता के मध्य से चलकर, पुनः जनता के मध्य पहुँचता है। कारण कि भक्ति की धारा को प्रवाहित करने के बीज जनता के मध्य विद्यमान थे ही।

---

१. डा० श्याम सुन्दर दास : कबीरग्रंथावली की भूमिका, पृ० १

पंचम परिच्छेद

इतिहास की कसौटी पर भक्तमाल के चरित्रों का मूल्यांकन

अतीत को प्यार भरी दृष्टि से देखना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसके प्रति हमारे मन में मोह रहता है।

'भक्तमाल' में अनेक भक्तों का उल्लेख किया गया है जिसमें कवि ने भक्तों की सम्पूर्ण जीवनी न देकर उनका उल्लेख मात्र किया है। जिस प्रकार फ़ारसी 'तज़किरों' मे वर्ग-विशेष के लोगों का विवरण संक्षेप में दिया जाता है, उसी प्रकार 'भक्तमाल' में कवि ने भक्त-मंडली के प्रमुख भक्तों के चरित्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। 'भक्तमाल' तथा वार्ता साहित्य, और 'तज़किरों का वर्ण्य-विषय एक नही है, किन्तु फिर भी वर्णन-शैली एक ही है। "हिन्दी में भक्तमाल, चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता आदि कुछ इने-गिने ग्रन्थों को छोड़कर इस प्रकार का (तज़किरों जैसा) साहित्य है ही नहीं और इसीलिए हमें अपने साहित्यिकों की स्फुट या ग्रन्थाकार कृतियाँ तो प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु उनके जीवन के सम्बंध में हम उनके ग्रन्थों से ही, जिसे अतः साक्ष्य कहते हैं, थोड़ा-बहुत कुछ ढूँढ़-ढाँढ कर निकाल ले तो निकाल ले, नहीं तो बिल्कुल अन्धकार में ही रह जाते हैं।"[1] वास्तव में 'भक्तमाल' को एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ माना जा सकता है जिसने अनेक भक्तों और साहित्यकारों, कवियों के जीवन पर प्रकाश डाला है, जो उस समय तक अन्धकार के गर्त में पड़े थे।

हिन्दी साहित्य में इतिहास का प्रारम्भिक रूप इस वार्ता-साहित्य तथा 'भक्त-माल' में ही दिखायी पड़ता है, यद्यपि इन ग्रन्थों में वर्णित सामग्री को शुद्ध ऐतिहासिक

---

१. गोपाल चन्द्र सिंह : "फ़ारसी और उर्दू के तज़किरों एवं अन्य ग्रंथों में हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री" हिन्दी अनुशीलन (वर्ष ८, अंक ३), पृ० ११०

नही कहा जा सकता । कारण यह है कि न तो इन ग्रन्थों में किसी प्रकार की क्रमबद्धता है और न तिथियों का ठीक-ठीक उल्लेख ही । 'भक्तमाल' में केवल नाभादास ने भक्तों का उल्लेख मात्र कर दिया है और किसी भी प्रकार न तो उनके जीवन से सम्बद्ध किसी घटना विशेष का उल्लेख किया है और न उनका समय आदि ही दिया है । इन तथ्यों के अभाव में इसे (भक्तमाल) शुद्ध इतिहास मानना बडी भूल होगी ।

हिन्दी साहित्य मे इतिहास की परम्परा का सूत्रपात 'सरोज'[१] से होता है । सबसे पहली बार साहित्यकारों के जीवन पर इस पुस्तक ने पर्याप्त प्रकाश डाला । इसके पश्चात् 'विनोद'[२] भी साहित्य के प्रांगण मे आया जिसमें अनेक कवियों, और साहित्यकारों का जीवन-वृत्त, साहित्यिक सेवा, उनकी भाषा और साहित्य आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इस पुस्तक को सच्चा इतिहास कहने में किसी प्रकार का संकोच नही हो सकता । कारण कि जिस दृष्टिकोण को लेकर विद्वान लेखकों ने इसको जन्म दिया, वह ऐतिहासिक था । कहने का अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ में क्रमबद्धता, तिथियों का आलोचनात्मक विवरण, भाषा और साहित्य का मूल्यांकन जिन मानदंडों को लेकर किया गया है, वे सर्वथा वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण है और इतिहास के लिए ये सभी तत्व अनिवार्य हैं । ये तत्व 'भक्तमाल' मे नही हैं ।

भक्तमाल ने प्रमुख-चरित्र

देश-काल का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधित्व मानव समाज में ही अभिव्यक्त होता है । साहित्यकार, समाज का कर्णधार हुआ करता है, अगुवा होता है । अतः समाज के अनुरूप ही वह अपने साहित्य के चित्रों में रंग भरता है । नाभादास के समय में देश में मुसलमानी शासक थे । हिन्दू जनता धर्म से दिन प्रतिदिन विमुख होती जा रही थी । आवश्यकता इस बात की थी कि कोई उसे ठीक मार्ग पर लगाता । 'काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं' ।[३] नाभादास जनता के सम्मुख एक विशेष उद्देश्य को लेकर अवतरित हुए और वह था जनता में भक्ति की लहर को पुनः प्रवाहित करना । यही कारण है कि उन्होंने अनेक भक्तों के चरित्रों का प्रशसात्मक वर्णन कर उन्हें जनता के मध्य प्रतिष्ठित किया । नाभा--

---

१. शिवसिंह सेंगर : 'सरोज'

२. मिश्रबंधु विनोद

३. डा० श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली (भूमिका) पृ० १

दास ने समय के अनुरूप ही उन भक्तों के चरित्र को प्रस्तुत किया है। कवि ने ग्रन्थ में कहीं-कहीं ऐसे उल्लेख भी किये है जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति के माध्यम से अनेक ऐसे अलौकिक कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं जो सामान्य मानव के लिए केवल कल्पना तक ही सीमित है। धना जी के सम्बंध में इसी प्रकार की घटना का कवि ने उल्लेख किया है कि बिना बोये ही धना की भक्ति के कारण उनके खेत में फसल उत्पन्न हुई थी।[1]

चरित्रों के दो प्रमुख भेद किये जा सकते है। एक देव वर्ग और दूसरा दानव वर्ग। "मनुष्य में सुन्दर असुन्दर, उदात्त हीन और उदात्त संकुचित सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। तारतम्य के आधार पर प्रवृत्तियों के द्वन्द्व का प्रदर्शन किया जाता है।"[2] प्रवृत्तियों का संतुलन चरित्र के विकास और स्वाभाविकता में सहायक होता है। चरित्रों के वर्णन मे मनोवैज्ञानिकता का सहारा लेना भी आवश्यक है। हृदय में उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण से चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और प्रभावशाली हो जाता है। नाभादास का चरित्रांकन आधुनिक युग के चरित्रांकन से बहुत कुछ भिन्न है। कारण यह है कि उन्होंने भक्तों, संतों के चरित्रों को 'भक्तमाल' में प्रस्तुत किया है जो सामान्य वर्ग से सर्वथा भिन्न हुआ करते है। सामान्य वर्ग के किसी भी पात्र के साथ मनमाना खिलवाड़ किया जा सकता है, किन्तु भक्तों के चरित्रांकन में संयम से काम लेने की आवश्यकता होती है। क्योंकि वे हमारे आदर्श हुआ करते हैं, उन्हें काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि छू नहीं पाते। ये सभी बातें उन भक्तों की महान् साधना और तपस्या का द्योतन करती है। भक्त और संत हमारे लिए यथार्थ की अपेक्षा आदर्श अधिक होते हैं। वे हमारे लिए, समाज के लिए पूज्य हुआ करते हैं। नाभादास ने भक्तों के चरित्रांकन में प्रमुख रूप से निम्नलिखित बातों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है :

(क) आदर्श की स्थापना

(ख) चरित्रांकन में श्रद्धा और भक्ति का समावेश

(ग) यथार्थ की उपेक्षा

नाभादास इन भक्तों को भगवान का दूसरा रूप ही सम्भवतः मानते थे। इसका कारण यह है कि इनकी दृष्टि में सभी भक्त महानता और आदर्शों से परिपूर्ण थे। सर्वत्र नाभादास को यह भक्त महान् और आदर्श ही दिखायी पड़ते हैं। जिन

---

१. नाभादास कृत भक्तमाल (प्रकाशित कल्याण भक्त चरितांक), पृ० ३

२. डा० जगन्नाथ प्रसाद : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २६७

संतों की अवहेलना 'ब्राह्मण समाज' ने 'छुआ-छूत' के आधार पर की थी, उन्हें भी कवि आदर्श और महान् मानता है और आदर्श रूप में ही चित्रित करता है। 'रैदास' के चरित्रांकन में कवि ने बड़े संयम से काम लिया है। उन्हें विवेकी, विमल-वाणी वाला निपुण आदि कहा है। 'रैदास' भक्तों में महान् थे :

"संदेह ग्रंथि खंडन विपुल, बानि बिमल रैदास की।
सदाचार श्रुति शास्त्र बचन, अविरुद्ध बिचारयौ।"[१]

आदर्श पात्रों के रूप में चरित्र अंकित करने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'रामायण', 'महाभारत' आदि महाकाव्यों में इसके ज्वलंत उदाहरण विद्यमान हैं। भक्त राघवदास जी का चरित्रांकन करते हुए कवि ने उन्हें अनेक गुणों से अलंकृत किया है। राघवदास जी ने कलिकाल पर विजय प्राप्त कर ली है, आप पहुँचे हुए भक्त और साधु हैं, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ रूपी अग्नि की लहर इस भक्त को स्पर्श तक न कर सकी। उसी प्रकार जैसे सूर्य अपनी किरणों से जल को सुखा देता है, समय आने पर वही जल वर्षा के रूप में बरसता है। राघव-दास ने भी अनेक लोगों से धन आदि एकत्र कर, फिर उसे साधु-सेवा में लगा दिया :

"कलिकाल कठिन जग जीति यों, राघौ की पूरी परी॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी।
सूरज ज्यों जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यों त्यागी॥
सुन्दर शील सुभाव, सदा संतन सेवाव्रत।
गुरु धर्म निकष निर्वहयौ, विश्व में बिदित बडौ भ्रत॥...."[२]

राघवदास के चरित्र से सहज ही मे अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं। हमारे लिए वह पूज्य तथा आदर्श है ही जो इस विश्व में रहता हुआ भी विश्व की कलुषताओं से अपना पृथक् अस्तित्व रखता हो। हमारे संत और भक्त इन्द्रियों को पराजित करना ही अपने जीवन का प्रथम और परम कर्तव्य समझते थे।

नाभादास ने यथार्थ की अवहेलना की है और यही कारण है कि भक्तमाल के चरित्र इतिहास की कसौटी पर अधिक खरे नहीं उतरते। आदर्श के कारण कवि भक्तों के यथार्थ रूप को भूल-सा गया है। तुलसीदास, मीरांबाई आदि का यथार्थ रूप हमारे सम्मुख न आकर, आदर्श स्वरूप ही हमारे सम्मुख आता है। यथार्थ से दूर होते हुए भी सभी चरित्रों का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ा है। नाभा-

---

१. नाभादास कृत भक्तमाल (प्रकाशित कल्याण भक्त चरितांक), पृ० ३
२. वही

दास ने एक राम-भक्त की भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा है कि एक बार वह रामभक्ता स्त्री अपने पति के साथ कहीं जा रही थी। दुर्गम बन के पूर्व ही उन दोनों के साथ दो ठग हो लिए। स्त्री को उन ठगों पर संदेह हुआ तो उन दोनों ठगों ने कहा कि 'हमारे तुम्हारे बीच रघुनाथ जी हैं, डरने की कोई बात नहीं। ऐसा कहकर ठगों ने उन भक्तों (पति-पत्नी) का संदेह दूर किया। जंगल के बीच पहुँचते ही उन ठगों ने उस भक्त (पति) को मार डाला। इस पर वह रामभक्ता पत्नी ने भगवान का स्मरण किया। भगवान प्रकट हुए और इन दुष्टों को मार डाला तथा उस भक्त को पुनः जीवित कर दिया :

"बीच दिये रघुनाथ भक्त, संग ठगिया लागे।
निर्जन बन में जाय दुष्ट कर्म कियो अभागे॥
बीच दियो सो कहाँ ? राम कहि नारि पुकारी।
आये सारंगपानि शोक सागर ते तारी॥
दुष्ट किये निर्जीव सब, दास प्राण संजाधरी।
और युगन ते कमल नैन कलियुग बहुत कृपा करी॥"[1]

वास्तव में ऐसी भक्ति बिना प्रभावित किये नहीं रह सकती। इस प्रकार के भक्त-चरित्रों को पढ़ने के पश्चात् मस्तिष्क पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

'भक्तमाल' के कुछ उन प्रमुख चरित्रों का विवरण नीचे दिया जाता है जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं।

१. शंकराचार्य
२. रामानन्द
३. तुलसीदास
४. सूरदास
५. कबीरदास
६. मीरांबाई

(१) **शंकराचार्य** : शंकराचार्य भारतवर्ष के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुए थे। दर्शन के इतिहास में शंकराचार्य की गणना अच्छे विचारकों में होती है। नाभादास ने 'भक्तमाल' में शंकराचार्य के विषय में कहा है कि वे वर्णधर्म, आश्रमधर्म और भागवत-धर्म के पालन करने वाले थे। उन्होंने धर्म-विमुख, जैन, बौद्ध आदि अनीश्वरवादियों को ईश्वर की ओर उन्मुख

---

१. सम्पादक रूपकला जी : भक्तिसुधा स्वाद तिलक (टीका भक्तमाल)

किया। इन समस्त वातों का समर्थन विद्वान इतिहासज्ञ डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'भारत का इतिहास'[१] मे दिया है।

(२) **रामानन्द** : युग प्रवर्तक रामानन्द 'भक्ति-आंदोलन' के प्रमुख अगुवा थे। इनके प्रयास मे भक्ति की धारा में एक अद्भुत जागृति एवं क्रान्ति समुत्पन्न हुई। 'भक्तमाल' के उल्लेख से विदित होता है कि ये दक्षिण देश के रहने वाले थे और एक संन्यासी के चेले थे। एक दिन वे रामानुज स्वामी की गद्दी के महंत राघवानन्द स्वामी के दर्शन को गये। उन्होंने कहा कि तुम्हारी आयु अब वहुत कम रही है जो कुछ करना हो कर लो। यह सुनकर रामानन्द जी राघवानन्द जी के चेले हो गए। राघवानन्द जी ने रामानन्द की मृत्यु के समय उन्हें ब्रह्मांड में प्राण चढ़ाकर समाधिस्थ कर दिया। जब मृत्यु का दिन टल गया तब फिर प्राण वायु उतार कर वहुत दिनों तक जीने का वरदान दिया।[२] रामानन्द के जिन प्रमुख शिष्यों का विवरण कवि ने 'भक्तमाल' में दिया है, वे सभी इतिहास-प्रसिद्ध सत हुए हैं जैसे कवीर, पीपा, रैदास आदि।

रामानन्द ने विना किसी भेद-भाव के, अनेक निम्न वर्ण के लोगों को अपने सम्प्रदाय मे दीक्षित किया था। डा० ईश्वरी प्रसाद ने भी अपने इतिहास मे इस बात का संकेत किया है कि रामानन्द ने वर्ण-भेद को मिटाने का प्रयास किया।[३] भारतीय धर्म के इतिहास मे रामानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण था। रामानन्द बड़े उदारचेता व्यक्ति थे। उनकी उदारता का उल्लेख डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने निम्न लिखित शब्दों में किया है :

"उदारता रामानन्द स्वामी की महानता का लोक प्रचलित प्रमाण है। इसी कारण उन्होने कबीर जुलाहा, रैदास चमार, सेना नाई और धना जाट को भी अपना शिष्य बनाया। कहा तो यहाँ तक जाता है कि मुसलमानों द्वारा बल पूर्वक धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान हुए लोगों को भी उन्होंने अपने 'राम तारक मंत्र' से पुनः हिन्दू बनाया था।"[४]

---

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, पृ० २३४

२. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली ध्रुवदासकृत, पृ० ८०

३. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास (धार्मिक आंदोलन अध्याय) पृ० १३३

४. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ४९

आचार्य शुक्ल जी ने भी रामानन्द के उदार और व्यापक दृष्टिकोण का उल्लेख किया है।[१] आचार्य मिश्रबंधु भी इस मत से सहमत हैं।[२]

(३) **तुलसीदास** : 'भक्तमाल' में तुलसी के महत्त्व को स्वीकार करते हुए नाभादास जी ने उन्हें 'भक्तमाल' का 'सुमेरु' कहा है। हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार तुलसी को युग का महान् व्यक्ति मानते हैं। 'भक्तमाल' में तुलसी के जन्म आदि से सम्बद्ध किसी भी घटना का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु फिर भी तुलसी के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर किसी प्रकार का भी संदेह नहीं किया जा सकता। डा० ग्रियर्सन भी तुलसी को समय का सबसे बड़ा लोकनायक मानते हैं।

आचार्य शुक्ल जी सर जार्ज ग्रियर्सन से मत साम्य रखते हुए कहते हैं "भक्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर भी लोकपक्ष उन्होंने नहीं छोड़ा। लोकसंग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था। कृष्णोपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के सम्बंध की ही गूढ़ातिगूढ़ व्यंजना हुई, दूसरे प्रकार के लोकव्यापक नाना सम्बंधों के कल्याणकारी सौंदर्य को प्रतिष्ठा नहीं हुई। यही कारण है कि इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई है वैसी और किसी की नहीं।"[३] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी इन्हें हिन्दी का अद्वितीय और प्रतिभा में सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं।

"...हिन्दी में इनके ऐसा समर्थ कवि दूसरा नहीं।....अतः तुलसीदास को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानना उचित ही है।[४]

(४) **सूरदास** : सूरदास के काव्य की प्रशंसा में कवि (नाभादास) ने लिखा है "सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहि सिर चालन न करै।"[५] सूरदास के विवरण से किसी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी नहीं होती, केवल उनकी काव्य-गत विशेषताओं का ज्ञान होता है। सूरदास इतिहास प्रसिद्ध हुए हैं और उन्हें सम्राट् अकबर का समकालीन माना गया है।[६] नाभादास के प्रस्तुत कथन से आचार्य

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७६
२. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० ७३
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४१
४. वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२
५. भक्तमाल, (कल्याण भक्त चरितांक में प्रकाशित) पृ० ३
६. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६२

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पूर्णतया सहमत हैं। उनका कथन है कि "सूर की समस्त विशेषताओं पर दृष्टि रख कर यह कहना ठीक ही है 'तत्व तत्व सब अँधरा कहिगा, कठवै कही अनूठी।' अर्थात् सूर ने प्रेम के प्रसंग की इतनी बातें कह दीं कि अन्य कवियों की उस प्रसंग की उक्तियाँ जूठी जान पड़ती हैं।"[१]

कबीरदास : नाभादास जी ने कबीर के सम्बंध में जो कुछ लिखा है उसमें तीन बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं :

(१) **"कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दरसनी"**

(२) **"भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो"**

तथा **"जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।"**

(३) **पक्षपात नहिं बचन, सबही के हित की भाखी"**

कहना न होगा कि इन्हीं तीन विशेषताओं पर प्रकाश प्रायः सभी इतिहासकारों और लेखकों ने डाला है।

आचार्य शुक्ल जी[२], आचार्य मिश्रबन्धु[३] आदि विद्वान इतिहासकारों ने कबीर की इन विशेषताओं की बारबार सराहना की है। कबीर के सम्बध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के निम्नलिखित कथन बहुत ही ध्यान देने योग्य हैं :

"कबीर साहब ने अपनी रचनाओं द्वारा ज्ञान और भक्ति दोनों का समन्वित रूप सामने रखा....हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता स्थापित करने के प्रयत्न में ये विशेष रूप से संलग्न हुए....जो भी हो कबीर के प्रयत्न से जनता में एकता का भाव अवश्य जगा।"[४]

डा० ईश्वरी प्रसाद ने भी कबीर के खंडन-मंडन की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है।[५] खंडन-मंडन का उल्लेख करते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है[६] कि 'मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता कबीर ने अपने साहित्य में कई स्थलों पर वर्णित की है'। नाभादास ने लिखा है कि कबीर ने बीजक, रमैनी[७] शब्दी आदि की भी रचना

---

१. वाङ्मय विमर्श, पृ० २८०

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७७-८०

३. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० १८१-८२

४. वाङ्मय विमर्श, पृ० २५४

५. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २००

६. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८०

७. "हिन्दू तुरकप्रमान रमैनी, शबदी, साखी" (भक्तमाल)

की थी। कबीरदास के जन्म, समय आदि का कोई उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं उपलब्ध होता।

(६) **मीराबाई** : मीराबाई के चरित्रांकन मे नाभादास ने निम्नलिखित कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश किया है :

(क) वे कृष्ण भक्ति मे तन्मय रहती थी।

(ख) मृत्यु के लिए उनके सम्बधियों ने उन्हे विष दिया जो भगवान की कृपा से अमृत हो गया।

मीरां मे सम्बद्ध यह दोनों ही घटनाएँ इतिहास-प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भी विष देने के प्रयत्नो और मीरां की भक्ति-भावना का उल्लेख किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि, "इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवत्कृपा से विष का प्रभाव इन पर न हुआ।"[1] विद्वान साहित्य के इतिहासकार मिश्रबंधुओं ने भी इस बात का सकेत किया है कि मीरा को मार डालने के कई प्रयत्न किये गए।[2] कर्नल टाड ने भी इन घटनाओ का समर्थन अपने 'राजस्थान के इतिहास' में किया है।[3]

कलियुग के अन्य अनेक चरित्र भी ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहास के क्षेत्र से दूर है। कहने का तात्पर्य यह है कि है तो वे चरित्र इतिहास-प्रसिद्ध, किन्तु नाभादास ने केवल उनका उल्लेख मात्र किया है, उनके चरित्रों के ऐतिहासिक तथ्यों (जन्म, मृत्यु, समय आदि का विवरण नहीं दिया) का अभाव है। सूरदास मदन मोहन, नन्ददास, रैदास, कृष्णदास, रांका, बांका, सूरदास बिल्वमगल आदि अनेक भक्तों के चरित्राकन मे कवि (नाभादास) ने किसी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश नही किया, प्रशसा के रूप में उनका उल्लेख मात्र कर दिया है। अरबी और फारसी के 'तज़्किरो' की भाति ही नामोल्लेख करके ही कवि सतुष्ट हो जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कवि इतिहास लिखने नही बैठा था, उसने अपनी श्रद्धा और भक्ति को श्रद्धाजलि रूप मे 'भक्तमाल' मे प्रस्तुत किया है।

'भक्तमाल' के पूर्वार्द्ध मे अनेक देवी-देवताओ का विवरण दिया गया है जिन्हें इतिहास की कसौटी पर कसना भूल होगी। क्योंकि वे सभी चरित्र प्रागैतिहासिक

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८४

२. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २५८

३. राजस्थान का इतिहास

है। 'रामायण', 'महाभारत', 'गीता', आदि में ऐसे चरित्रों का उल्लेख उपलब्ध होना है जो यथार्थ की अपेक्षा काल्पनिक अधिक हैं।

फारसी और अरबी तथा उर्दू साहित्य में 'तज़्किरा' लिखने की प्रथा बड़ी प्राचीन है। 'तज़्किरों' में समय विशेष, वर्ग विशेष, के उल्लेखनीय व्यक्तियों का उल्लेख मात्र और कभी-कभी सम्पूर्ण जीवनी वर्णित रहती है। इन 'तज़्किरों' में अनेक हिन्दी के कवियों के विवरण भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, 'सर्वे-आजाद' को ले सकते है। इस ग्रन्थ में हिन्दी के निम्नलिखित कवियों का उल्लेख मिलता है :

(क) शेखशाह मोहम्मद और उनकी स्त्री चम्पा
(ख) सैयद निज़ामुद्दीन
(ग) दीवान सैयद रहमतुल्ला
(घ) मीर अब्दुल जलील
(च) सैयद गुलाम नबी रसलीन
(छ) सैयद बरकतुल्ला 'प्रेमी'
(ज) मीर अब्दुल वाहित ज़ौकी
(झ) मोहम्मद आरिफ

इस प्रकार के ग्रन्थों का हिन्दी में अभाव ही रहा है। 'भक्तमाल' और 'वार्ताओं' को अवश्य इस श्रेणी में रखा जा सकता है जिनमें संकेत रूप में भविष्य के इतिहास की सामग्री देखी जा सकती है। 'भक्तमाल' को हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। किन्तु चरित्रांकन अधिक प्रामाणिक न होने के कारण इस ग्रन्थ को शुद्ध इतिहास भी कह देना अधिक युक्ति-संगत न होगा। 'तज़्किरों' की भाँति ही 'भक्तमाल' में भी अनेक भक्तों का विवरण मिलता है। फिर भी 'तज़्किरों' और 'भक्तमाल' के वर्ण्य-विषय में अन्तर है, यद्यपि वर्णन-शैली पर्याप्त साम्य रखती है।

इतिहास के लिए मानव जीवन के तथ्यों की अपेक्षा होती है। नाभादास ने इस प्रकार के जीवन से सम्बद्ध किसी भी तथ्य विशेष का उल्लेख नहीं किया, केवल प्रशंसात्मक रूप में चरित्र से सम्बद्ध किसी घटना विशेष का उल्लेख कर दिया है, जो चरित्र को प्रभावशाली बनाने में सहायक हुई है। कवि का उद्देश्य था जनता के मध्य भक्तों की पुनः प्रतिष्ठा और इसमें कवि को सफलता भी आशातीत प्राप्त हुई।

इतिहासकार[1] का उद्देश्य समय विशेष की विचार-धारा को यथातथ्य उपस्थित करना होता है, ताकि उन विचार-धाराओं के माध्यम से उपदेश देना। नाभा-दास का प्रथम और पहला उद्देश्य था भक्त-चरित्रों के माध्यम से जनजीवन तक भक्ति का संदेश पहुँचाना। यदि नाभादास को इतिहास लिखना अभीष्ट होता, तो उन्होंने समय की विचार-धारा को यथातथ्य, मानव-जीवन के तथ्यों का उद्घाटन क्यों न किया होता, केवल भक्तों की प्रशंसा तक ही अपने को क्यों सीमित रखते।

साहित्य विचारों, अनुभूतियों, कल्पना आदि का सच्चा स्वरूप कहा जा सकता है। साहित्य में समाज के विचारों, भावनाओं, प्रवृत्तियों आदि की छाया प्रतिबिम्बित हुआ करती है। इनके अभाव मे साहित्य वैयक्तिक होगा, वह जनता का प्रतिनिधित्व करने में सर्वथा असमर्थ होगा। ऐसे साहित्य में न समाज होगा, और न वह समाज में किसी प्रकार का स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा। साहित्य रूपी जल कुएं की भाँति किसी परिधि मे बँध कर नही रहता, वह सरिता की भाँति प्रवहमान रहता है। 'भक्तमाल' में जीवन के लिए जिस आदर्श मार्ग की योजना की गई है, उससे न तो यह ग्रन्थ कभी पुराना ही होगा और न इसका महत्त्व ही घटेगा।

---

१. "Historians generally illustrate rather than to correct the ideas of the communities within which they live and work...."

Arnold J. Toynbee : A Study of History, p. 1

षष्ठ परिच्छेद

हिन्दी में जीवन-चरित साहित्य का उद्भव और विकास

मनुष्य अनादि काल से सत्य के अन्वेषण और उसकी अनुभूति में सलग्न रहा है। मानव की प्रवृत्तियों के इतिहास की तह में सत्य की अनुभूति की भावना बड़ी प्रचुर और सामान्य रूप में विद्यमान रही है। 'सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' की भावना मानव-जीवन को चिरकाल से अनुशासित करती रही है। इस आदर्श वाक्य ने भारतीय जीवन को भी उचित दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है। सत्य की अनुभूति के पश्चात् मानव ने इस भावना को प्रसारित और अभिव्यक्त करने का भी प्रयास किया है। इसी सत्य की अभिव्यक्ति को ही साहित्य कहा जा सकता है।[1] सत्य की इसी विशेष अनुभूति को समय-समय पर मानव ने भाषा के माध्यम से व्यक्त किया और आगे चलकर यही व्यक्त की हुई अनुभूति साहित्य की आधारशिला बनी।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, छाया है और है समाज की अभिव्यक्ति। इसीलिए कहा भी जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' 'साहित्य मानवता

---

१. The great impulses behind literature may, I think, be grouped with accuracy enough for practical purposes under four head—(a) our desire for self-expression, (b) our interest in people and their doings, (c) our interest in the world of reality in which we live and in the world of imagination which we conjure into existence; and (d) our love of form as form.

Hudson: An Introduction to the Study of Literature, p. 11, Ed. 1945.

का मस्तिष्क है'।[१] समाज मनुष्यों का वह समूह है जिसमें उसके हित-चिंतन, दुःख-सुख एवं जीवन के व्यवहार सन्निहित रहते है। समाज एक ऐसे अगाध सागर के समान है जिसमे अनेक विभिन्नाकार नदियाँ, सरिताएँ मिलकर उसी में समाहित हो जाती है। जन-समुदाय का हर एक व्यक्ति जब अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सम्बधों को एक दूसरे से सम्बद्ध करता है, तब इस प्रकार की एक भावना से परिचालित व्यक्तियों के एकीकरण को समाज कहते है। जहाँ पर मनुष्य अपनी विचार-धारा तथा भावनाओं का विकास एवं आदान-प्रदान करता है, जहाँ उसके जीवन की गति मे प्रवाह आता है, जहाँ वह अपने जीवन के उद्देश्यों को बिना सघर्ष के सिद्ध कर लेता है, उसे समाज कहा जा सकता है। इसी हमारे समाज का साहित्य से घनिष्ट सम्बध है। साहित्यकार समाज के वातावरण को लेकर ही, अपने विचारों में उसे अनुरंजित कर, अपने व्यक्तित्व की छाप लगाकर जो कुछ भी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है, वह साहित्य का सत्य रूप हुआ करता है। समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व सम्भव नही और बिना साहित्य के समाज मनुष्यों के एक जर्जरित ढाँचे के सिवाय और कुछ भी नही है। समाज में मनुष्य के कल्याण की भावना सर्वोपरि रहा करती है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह सदैव विश्लेषण से संश्लेषण की ओर बढ़ता रहता है और उसकी इसी प्रवृत्ति का द्योतन समाज करता है जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन 'जन-हिताय' का स्वरूप धारण कर लेता है। व्यक्ति समाज के इसी कल्याणमय भाव से प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य-सर्जन करता है।[२] साहित्य को मानवता के उत्थान-

---

१. Literature is the brain of humanity.

२. We are strongly impelled to confute to others what we think and feel, hence the literature which directly expresses the thoughts and feelings of writer, we are intensely interested in men and women, their lives, motives, passions, relationships, hence the literature which deals with great drama of human life and action .... Man, as we are often reminded, is a social animal and as he is thus by the actual constitution of his nature unable to keep his experiences, observations, ideas, emotions, fancies to himself, but is on the contrary

पतन का क्रमिक इतिहास भी कहा जा सकता है। साहित्य का यह परम कर्तव्य भी है कि वह मानव-जीवन का विश्लेषण, आलोचना और उसकी विषमताओं आदि का उद्‌घाटन करे और करता भी ह। साहित्य का उद्‌गम स्थल मनुष्य का जीवन ही है।[१] मनुष्य के जीवन या उसके चरित्र से साहित्य के गूढ़ एवं अनिवार्य तत्वों की खोज भी की जा सकती है।[२] साहित्य में मनुष्य की अनुभूतियों, बौद्धिक आदान-प्रदान और व्यवहार आदि का सच्चा और विस्तृत लेखा-जोखा रहा करता है। किसी भी अच्छे ग्रन्थ में मानव की घनीभूत अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति रहती है।[३]

जब साहित्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं तथा एक दूसरे के अस्तित्व का द्योतन करते है, तो साहित्य और जीवन का अन्योन्याश्रय सम्बंध होना स्वाभाविक ही है। जीवन साहित्य का उद्‌गम स्थल है और साहित्य जीवन का नियामक तथा परिमार्जक है। साहित्य जीवन से अपने लिए कलेवर ग्रहण करता है। साहित्य

---

under stress of a constant desire to impart them to those about him.... Ibid, p. 11.

१. To say that literature grows directly out of life is of course to say that it is in life itself that we have to seek the sources of literature, or in other words, the impulses which have given birth to the various forms of literary expression. Ibid, p. 11.

२. If Literature be at bottom an expression of life, and if it be by virtue of life, which it expresses, that it makes its special appeal, then the ultimate secret of its interest must be sought in its essentially personal character. Ibid, p. 14.

३. A great book grown directly out of life, in reading it we are brought into large, close and fresh relations with life, and in that fact lies the final explanation of its power. Literature is a vital record of what men have seen in life, what they have expressed of it, what they have thought and felt aspects of it. Ibid.

में जीवन के लगभग सभी रूपों का, आकार-प्रकार विवरण उपलब्ध होता है। साहित्य जीवन के मार्ग को प्रशस्त कर गंतव्य की ओर ले जाता है। साहित्य जीवन के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करता है। साहित्य में मानव-जीवन के विश्लेषण के तत्व भी होते हैं। जीवन से दूर, अनुपयोगी साहित्य अपना कोई महत्त्व नहीं रखता।[१]

मानव-जीवन की कथा कहता हुआ साहित्य अनेक रूपों में हमारे सम्मुख आता है। साहित्य के इन विशिष्ट स्वरूपों में कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना, गद्य काव्य, रूपक तथा जीवनी प्रमुख हैं। इन स्वरूपों के भी भेद किये गए हैं, किन्तु हमारे विषय का सम्बंध केवल जीवनी से ही है।

'जीवनी' अथवा 'जीवन-चरित्र' व्यक्ति विशेष के जीवन का वृत्तान्त हुआ करता है। यह भी कहा जा सकता है कि किसी के जीवन को विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही जीवनी है। अब 'जीवनी' की कुछ परिभाषाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए।

'दी आक्सफोर्ड डिक्शनरी' में जीवनी को परिभाषित करते हुए लिखा गया है, कि 'जीवनी व्यक्तियों के जीवन का साहित्य के रूप मे इतिहास है'।[२] पाश्चात्य आलोचक हेरालड निकलसन ने इस परिभाषा को युक्तिसगत और पूर्ण रूप उपयुक्त मानकर ग्रहण कर लिया है। इस विद्वान् ने इसके तीन प्रमुख तत्वों पर अधिक जोर दिया है और वे हैं 'इतिहास', 'व्यक्ति' और 'साहित्य'। स्पष्ट है कि जीवनी किसी भी व्यक्ति के जीवन का कलात्मक एवं यथार्थ का पूर्ण विवरण है। अतएव जीवनी में उन बातों के लिए कोई स्थान नही जो व्यक्ति के जीवन से प्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध न हो तथा कलात्मकता और ऐतिहासिकता से दूर हो।[३] जीवनी के विषय में कहा गया है कि "व्यक्ति के जीवन का इतिहास तथा उसके (व्यक्ति) जीवन की घटनाओं का इतिहास अथवा उसके (व्यक्ति) मत,

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : प्रेमचन्द्र, पृ० ५०

२. The history of the lives of individual men as a branch of literature—Oxford Dictionary.

३. This definition is convenient, it insists on three essential elements—'History', 'Individual', "Literature'.

विचार एवं समय की व्याख्या।"[१] इस परिभाषा के अतिरिक्त इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार "जीवनी किसी व्यक्ति विशेष की ही हो सकती है, सम्पूर्ण जनसमूह की नहीं।" सम्पूर्ण समूह अथवा जाति का विवरण प्रस्तुत करना इतिहास का काम है।[२] जीवनी को इतिहास का एक विशिष्ट रूप ही माना जा सकता है। इन परिभाषाओं से जीवनी विषयक आधुनिक धारणा भिन्न है। आज के युग में जीवनी का उद्देश्य है जीवन के संघर्षों द्वारा व्यक्ति की आत्मा का सत्य चित्रण।[३] इसके अतिरिक्त जीवनी को "जीवन भर का वृत्तान्त" भी कहा गया है।[४] किन्तु जीवनी के विषय में इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं है।

इन समस्त परिभाषाओं में 'जीवनी' शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इतिहास शब्द के प्रयोग से कुछ भ्रम-सा उत्पन्न हो जाता है कि क्या जीवनी और इतिहास में कोई अन्तर नहीं है? वास्तव में जीवनी न तो विशुद्ध इतिहास ही है और न उपन्यासों की ही श्रेणी में इसे रखा जा सकता है। जीवनी का अपना अस्तित्व है जो इन दोनों से भिन्न है। जीवनी और इतिहास में निम्नलिखित अन्तर है :

(१) जीवनी और इतिहास के प्रेरणा सूत्रों तथा विषय से महान् अन्तर है।

(२) जीवनी एक व्यक्ति की, इतिहास युगविशेष की प्रवृत्तियों, परिस्थितियों और घटनाओं का विवरण है।

(३) जीवनी में वर्णित विषय का सांगोपांग वर्णन, इतिहास सूक्ष्मता से दूर है।

जीवनी और इतिहास में कुछ समानताएँ भी है :

(१) जीवनी नायक के चरित्र का निष्पक्ष और तटस्थ चित्रण, इतिहास में ऐसा ही।

---

१. History of the life, of an individual. It may be a history of facts of an individual life, or an interpretation of his ideas and times by the writer.

The new Encyclopaedia Americana Vol. III, p. 722

२. That form of history which is applied not to races or masses of men, but to an individual.

Encyclopaedia Britanica, Vol. III, Ed. II, p.953

३. वही, पृ० ९५३ ४. हिन्दी शब्दसागर

(२) जीवनचरित में वाह्य-अभिव्यक्ति, अनपेक्षित इतिहास भी इसका समर्थक है ।

(३) इतिहास का सत्य जीवनी के लिए अपेक्षित है ।

पाश्चात्य आलोचक हेराल्ड निकल्सन ने जीवनी को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है :

(१) **विशुद्ध जीवनी :** ऐतिहासिक सत्य की अभिव्यक्ति, लेखक की तटस्थता, सुसंगठित, कलात्मक और वैज्ञानिक क्रमबद्धता आवश्यक है ।

(२) **अशुद्ध जीवनी :** भावुकता, व्यक्तिगत लगन और चरित्रनायक के प्रति अत्यधिक प्रेम-भाव इसके आधार है ।[१]

जीवनी के विषय में यह कहना भी अधिक संगत न होगा कि चरितनायक के जीवन भर की समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास है । जीवनी लेखक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह नायक की कुवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ़ जाय और नायक के गुणों का विस्तार से वर्णन करे ।[२] इस विषय में

---

१. "I do not think that it is necessary at this stage to say anything further regarding, 'pure' and 'impure' biography. I have defined the former as the truthful and deliberate record of an individual life written as a work of intelligence. I have indicated that biography becomes 'impure' when it is either untruthful or unintelligent or concerned with considerations extraneous to its own purposes".

The Development of English Biography, p. 14

२. "The business of biographer is often to pass lightly over those performances and incidents, which produce vulgar greatness, to lead the thoughts into domestic prevenes, and display the minute details of daily life, where exterior appendages are cast aside and men only excel each other in prudence and virtue." (By Dr. Johnson).

English Biography in Seventeenth Century, Vuran De Sola Paito, p. 11

डा० जानसन ने बहुत कुछ कहा है। डा० जानसन से मिलते-जुलते विचार जेम्स बासवेल के भी है :

" I cannot conceive a more perfect mode of writing any man's life, than not only relating all the most important events of it in their order, but interviewing what he privately wrote and said, and thought by which mankind are enabled as it were to him live, and to, "live o'er each scene" with him, as he actually advanced through the several stages of his life."[१]

डा० जानसन और बासवेल के मतों से स्पष्ट हो जाता है कि जीवनी के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें जीवन भर की घटनाओं का क्रमिक इतिहास निहित हो, वरन् यह विद्वान् जीवनी को जीवन का एक मनोवैज्ञानिक और रोचक अध्ययन मानते हैं। इस प्रकार इन विद्वानों ने जीवनी में मानसिक क्रियाओं को प्रधानता दी है।

हेराल्ड निकल्सन और विलियम डी मोला पिटो के मतानुसार जीवनी साहित्य के निम्नलिखित आवश्यक तत्व है :

(क) **किसी व्यक्ति विशेष का जीवन :** अमुक व्यक्ति का यह जीवन काल्पनिक तत्वो से पोषित नही होना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि यथार्थ का ही चित्रण होना चाहिए।

(ख) **व्यक्ति-विशेष के जीवन का यथातथ्य चित्रण तथा ऐतिहासिक यथार्थता :** इस दृष्टिकोण से जीवन के उज्वल और कलुष से पूर्ण, पक्षों का उद्घाटन जीवनी में आवश्यक है।

(ग) **जीवनी में जीवनी :** लेखक की निष्पक्षता और तटस्थता का संयोग।

(च) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण :** जीवनी के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वैज्ञानिक क्रमबद्धता हो। इसके अभाव में सामग्री का संकलन और संयोजन ठीक नहीं हो सकता।

(छ) **मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :** किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक है। इसके आधार पर किसी भी व्यक्ति के मर्म तक आसानी के साथ पहुँचा जा सकता है।

---

१. Life of Johnson (1791)

(ज) कलात्मकता-जीवन के मार्मिक पक्षों की सफल अभिव्यंजना रचना को कलात्मकता प्रदान करती है।

जीवनी के मुख्य भेद निम्नलिखित हैं :

(१) जीवन-चरित्र
(२) आत्म-चरित्र
(३) संस्मरण
(४) दैनन्दिनी (डायरी)
(५) पत्र

यद्यपि जीवनी के विषय मे बहुत कुछ इसके पूर्व भी कहा जा चुका है, किन्तु यहाँ भी जीवनी के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। जीवनी को हम किसी व्यक्ति के जीवन भर की घटनाओं को, एक मनोवैज्ञानिक और कलात्मक ढंग की, एक ही तारतम्य में शृंखलाबद्ध प्रस्तुत की हुई सामग्री कह सकते हैं।

आत्मचरित जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जीवनी साहित्य के इस उपभेद में मनुष्य दूसरों के सम्बंध मे कुछ न कहकर अपने ही सम्बध में कहता है। श्री गुलाबराय के शब्दों में, "साधारण जीवनचरित्र से आत्म-कथा में कुछ विशेषता होती है। आत्म-कथा लेखक जितना अपने बारे मे जान सकता है, उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नही जान सकता, किन्तु इसके कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्म-प्रकाश में रुकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदर्श से तो दोनों ही प्रवृत्तियाँ निन्द्य हैं तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है। शील-संकोच के कारण पाठक को सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना ही वांछनीय नहीं कहा जा सकता। साधारण जीवनी-लेखक की अपेक्षा आत्मकथा-लेखक को ऊब से बचने और अनुपात का अधिक ध्यान रखना पड़ता है।...जीवनी लिखने वाले को दूसरे के दोष और आत्मकथा लिखने वाले को अपने गुण कहने में सचेत रहने की आवश्यकता है।"[१] आत्मचरित, जीवनचरित से भिन्न और स्वतंत्र रचना है। इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। आत्मचरित आत्म-परिचय का सबसे विश्वस्त और सुलभ साधन है।[२]

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २४९

२. If you do not want to explore an egoism, you should not read auto-biography.

आत्मचरित्र मे लेखक अहंभावना की अभिव्यंजना भी खूब करता है। एच० जी० वेल्स का कहना है कि यदि आप लेखक की अहंभावना से बचना चाहते है तो आत्मकथा की ओर दृष्टिपात मत करिये।[१] किन्तु वास्तव में आत्म-चरित-लेखक का यह परम कर्तव्य होना चाहिए कि वह आत्मप्रशंसा में सत्य की अवहेलना न करे। आत्मचरित एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम लेखक के विषय मे भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर सकते है। कारण एक मनुष्य जो कुछ अपने विषय में कहेगा, वह अधिक प्रामाणिक होगा अपेक्षा दूसरे द्वारा कही हुई सामग्री से। आत्मचरित-लेखक को अपने विषय में कुछ कहते समय बहुत सतर्क रहना चाहिए अन्यथा उसे आलोचना का पात्र बनना ही पड़ेगा।

अब संस्मरण के विषय में भी विचार कर लेना चाहिए। किसी व्यक्ति-विशेष के विषय में स्मरण रखने योग्य घटना को संस्मरण कहते है।[२] अंग्रेजी साहित्य में संस्मरण से अभिप्राय होता है 'घटनाओं का उल्लेख' या 'आत्म-जीवनी सम्बन्धी उल्लेख'।[३] संस्मरण-लेखक स्वयं नायक हो सकता है अथवा कोई अन्य भी हो सकता है जो किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी स्मृति को आधार बना कर कुछ घटनाओं की अभिव्यक्ति करे।

सस्मरण मे न तो आत्मचरित की एकता होती है और न जीवनचरित्र की क्रमबद्धता। संस्मरण मे चरितनायक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की अभिव्यक्ति होती है। अत. इन संस्मरणों से लेखक एवं चरितनायक के व्यक्तित्व का ज्ञान भलीभाँति नही हो सकता। आज के युग मे संस्मरण बड़ी व्यापकता के साथ लिखे जा रहे है।

दैननंदिनी जीवनी साहित्य का एक प्रकार है। दैननंदिनी मे मनुष्य अपने दैनिक जीवन के समस्त रहस्यों को प्रकट करता है। डायरी में कोई भी व्यक्ति स्वच्छन्दता पूर्वक बिना किसी रोक-टोक के अपने गुप्त तथा व्यक्तिगत चरित्र

Experiments in Autobiography, Vol. II, Ed. 1934, p. 417

१. Mitch: A History of Auto-biography in Antiquity Vol. I, p.8 Ed. 1950.

२. हिन्दी शब्दसागर

३. आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी

की अभिव्यक्ति करता है। डायरी-लेखक निर्भीक होता है। डायरी के पढ़ने से लेखक के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

दैनंदिनी में जीवनी के दो रूप मिलते हैं, कभी-कभी लेखक अपने विषय में लिखता है और कभी-कभी किसी दूसरे के विषय में जो उससे घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होता है। डायरी-लेखक जीवन में घटित होने वाली अनेकों घटनाओं और मनोविकारों की ओर विशेष रूप से ध्यान देता है, अतः उसका कार्य अत्यन्त दुरूह है। यदि डायरी-लेखक नियमित रूप से डायरी लिखता है तो उसमें जीवन का सम्पूर्ण रूप अथवा चरित्र उपलब्ध होता है अन्यथा मुख्य घटनाएँ ही प्रकाश में आ पायेंगी।

श्री गुलाबराय के शब्दों में, "पत्रों का स्थान एक प्रकार से आत्मकथा में ही आता है। अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मकथा में व्यक्ति का इतिहास सम्बद्ध होता है, पत्रों में कुछ असम्बद्धता सी रहती है। पत्र साहित्य का सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि उसके द्वारा हमको लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चलता है। उसमें हमको बने-ठने, सजे-सजाये मनुष्य का चित्र नहीं वरन् एक चलते-फिरते मनुष्य का चट चित्र (Snapshot) मिल जाता है। लेखक के वैयक्तिक सम्बध, उसके मानसिक और बाह्य संघर्ष तथा उसकी रुचि तथा उस पर पड़ने वाले प्रभावों का हमको पता चल जाता है। पत्रों में कभी-कभी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक इतिहास की झलक भी मिल जाती है। आत्मकथा की भाँति कुछ पत्रों का महत्त्व उनके विषय पर निर्भर रहता है, कुछ का शैली पर। जिन पत्रों का विषय और शैली, दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।"[१]

पत्र-साहित्य के अन्तर्गत लेखक का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रतिबिम्बित होता है। इसका कारण यह है कि पत्रों में व्यक्ति अपने भावों को पूर्णतया स्पष्ट रूप में व्यक्त करता है।

जीवनी साहित्य में इस प्रकार के सभी स्वरूपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी जीवनी साहित्य (पूर्वार्ध)

सर्वप्रथम जीवनी साहित्य के विषय में जो एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उठता है वह यह कि जीवनी साहित्य के सृजन का ध्येय अथवा लक्ष्य क्या है? स्वभावतः मनुष्य अपने से महान् व्यक्ति का सम्मान करता ही है। इस

---

१. **सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २५२**

प्रकार के भावों की जननी महान व्यक्तियों की कृतियाँ ही हुआ करती हैं। किसी व्यक्ति विशेष के उन गुणों से प्रभावित होकर, जिनका प्रभाव जन-सामान्य पर व्यापक हुआ करता है, हमारा हृदय श्रद्धा की पुष्पांजलि उसके चरणों में अर्पित करता है। महान् व्यक्तियों के प्रति आदर और सम्मान की यह भावना ही जीवनी-लेखन-प्रणाली का उद्गम स्थल है। वास्तव में जीवनी के उद्गम का स्रोत हमारी इच्छाओं और प्रवृत्तियों में निहित है। मनुष्य स्वभाव से ही पूज्य मनुष्यों की स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास करता है, जो अपने सामान्य जन-समूह से कुछ भिन्न हुआ करते है।[१] इस प्रकार स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने का प्रमुख माध्यम है जीवन की विशेषताओं का लिपिबद्ध किया जाना।

तथ्य तो यह है कि मानव जाति का इतिहास उस जाति के महान् व्यक्तियों का ही इतिहास हुआ करता है। कार्लाइल ने इसी प्रकार के विचारों को एक स्थल पर प्रस्तुत किया था।[२]

भारत की धर्मप्राण जनता प्रारम्भ से ही महान् व्यक्तित्वों के प्रति श्रद्धा-भावना और सम्मान के भाव प्रकट करती आ रही है। भारतीय धर्म का इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि युग-युगों से महान् व्यक्तित्वों को इस देश की जनता ने 'मनसा, वाचा, कर्मणा' से पूज्य मानकर, उनका सम्मान किया है। युग-युगों से राम और कृष्ण जैसे दैवी चरित्र, गौतम बुद्ध जैसे मानवीय चरित भारतीय जनता को विविध तापों से संतप्त लौकिक जीवन को उन्नत और आदर्श तथा गतिशील बनाने के लिए प्रेरणा देते रहे हैं। इन महापुरुषों का व्यक्तित्व बहुमुखी था, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाश से पूर्ण करने में समर्थ था। भारत की पुनीत भूमि पर अनेक महान् आत्माएँ समय-समय पर अवतरित होती

---

१. The inspiration of biography as an instinctive desire to do honour to the memories of those who by character and exploits have distinguished themselves from the mass of their countrymen.

Sir Sidny Lee : Development of English Biography, p. 11-12

२. The history of mankind is the history of its great men, to find out these clean, the dirt from them, and place them on proper pedestal. Ibid, p. 11

रही है और उन्होंने जग-जीवन को आदर्शमय बनाने का प्रयास भी किया था। यह महान् व्यक्तित्व अनेक गुणों के समन्वित रूप के संघात हुआ करते थे। भगवान श्रीराम का चरित्र शील, शक्ति और सौन्दर्य का अगाध सागर है। भगवान श्रीराम का चरित्र भारतीय जनता का प्रिय और पूज्य व्यक्तित्व रहा है। राम का व्यक्तित्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, कुछ विशेष बातों को लेकर प्रस्फुटित हुआ है। इन महान् चरित्रों का गुण-गान बहुत समय से होता चला आ रहा है। रामायण, रघुवंश, महाभारत आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। भारतीय साहित्य में इस प्रकार के ग्रन्थो की कमी नही है। प्रत्येक युग में इस प्रकार के श्रद्धा और भक्ति-भावना से ओत-प्रोत ग्रन्थों की रचना हुआ करती है। इसी प्रकार के ग्रन्थों में जीवनी के तत्व निहित हैं।

हिन्दी साहित्य में जीवनी साहित्य का प्रवेश संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से हुआ। हिन्दी जीवनी साहित्य के तत्व इन्हीं समस्त भाषाओं से हिन्दी मे आये थे। इन भाषाओं मे जीवनी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया था। धार्मिकता और नैतिकता के दृष्टिकोण से भी इन भाषाओं में कुछ कहानियाँ लिखी गई जिन्हें जीवनी के ही क्षेत्र में रखा जा सकता है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं।

भारतीय भाषाओं में जीवनी का वह उत्कर्ष नहीं दिखायी देता जो अपेक्षित था, इसका कारण है आत्मख्याति में अरुचि रखना। इस युग के पाश्चात्य तथा भारतीय लेखक (क्रोचे, गेटे, हीगल, टैगोर एवं प्रसाद) साहित्य को प्रधानतया आत्माभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन मानते आ रहे हैं। साहित्य में आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि साहित्यकार साहित्य में अपने स्वरूप का अंकन कर स्वयं आनन्द प्राप्त करता है और दूसरे पाठक भी ऐसी रचना में आत्मानुभव प्राप्त कर आनन्दित होता है। आज का साहित्य-स्रष्टा साहित्य को केवल तटस्थ ज्ञान की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं मानता, वरन् वह उसकी अनुभूतियों के प्रकाशन का एक माध्यम भी है। कवि प्रसाद के अनुसार साहित्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। टैगोर ने कहा है कि, "हृदय का जगत अपने को व्यक्त करने के लिए आकुल रहता है, इसीलिए चिरकाल से मनुष्य के भीतर साहित्य का वेग है। अपने को वह अनेक हृदयों में अनुभूत कराना चाहता है।" गेटे के अनुसार साहित्यकार की अन्तरात्मा की छाप ही उसकी शैली है। उदात्त शैली के हेतु उदात्त चरित्र अपेक्षित रहता है। हीगल ने आत्माभिव्यंजना को ही काव्य का मुख्य तत्व बताया है। इन समस्त विद्वानों के मतों का विवेचन

करने से ऐसा ज्ञात होता है कि साहित्य में आत्माभिव्यक्ति की व्यापकता और महत्ता सर्वमान्य तत्व हैं। किन्तु प्राचीन समय में साहित्यकारों के सम्मुख इस प्रकार का कोई प्रश्न ही नही था। हिन्दी साहित्य के भक्ति युगीन कवि आत्माभिव्यक्ति को निकृष्ट कार्य समझ कर सदैव अपने विषय में मौन रहा करते थे। भारतेन्दु युग के पहले तक साहित्य मे आत्म-विज्ञप्ति का नितान्त अभाव था। भक्त कवि अपने जीवन के समस्त प्रेम और श्रेय को भगवान के चरणों मे अर्पित कर, भला आत्माभिव्यक्ति को क्या महत्त्व देते। 'रामचरितमानस' और 'सूर-सागर' जैसे विशाल ग्रन्थों की रचना करने वाले सूरदास और तुलसीदास भी अपने विषय मे मौन है। दुनिया भर की सब कुछ कह डालने वाले कबीर भी अपने विषय में चुप रह गए। इसका प्रमुख कारण है कि भारतीय साहित्यकारों की परम्परा के विरुद्ध यह बात थी कि वे अपने विषय में कुछ कहें। इस आत्म-विज्ञप्ति का अभाव केवल हिन्दी में ही नही दृष्टिगत होता है, अन्य भाषाओं जैसे पाली, प्राकृत आदि में भी इस प्रवृत्ति का अभाव है।

भारतीय दृष्टिकोण भौतिकता की अपेक्षा पारमार्थिक अधिक है। जीवन और जगत के विषय मे भारतीय दृष्टिकोण सदैव से ही अभौतिक रहा है। यही कारण है कि इस देश के कवियो, साहित्यकारों को आत्म-परिचय मे कोई आकर्षण न दीख पड़ा।

अब अन्य भाषाओं मे भी जीवनी के स्वरूप का दर्शन कर लेना चाहिए। भारतीय साहित्य का प्रारम्भ वेदों से माना जाता है। हिन्दी का विकास सस्कृत से हुआ है। वेदों की वैदिक भाषा से सस्कृत का विकास, फिर संस्कृत से क्रमशः पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और इस प्रकार सस्कृत का अन्तिम स्वरूप अपभ्रंश के माध्यम से हिन्दी के रूप मे प्रस्फुटित हुआ।

जीवनी के तत्व बीज रूप मे हमे वेदो मे ही उपलब्ध हो जाते है। श्रीराम दास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' में लिखा है कि :

"इस वेद को अथर्व नामक ऋषि ने देखा इसलिए इसका नाम अथर्ववेद पड़ा। श्री ग्रिफिथ ने अपने अंग्रेजी पद्यानुवाद की भूमिका मे लिखा है कि अथर्वन ऋषि एक अत्यन्त पुराने ऋषि का नाम है जिसके सम्बध में ऋग्वेद मे लिखा है कि इसी ऋषि ने संघर्षण द्वारा अग्नि को प्रकट किया और पहले पहल यज्ञो के द्वारा वह मार्ग तैयार किया जिनसे कि मनुष्यों और देवताओं मे सम्बध स्थापित हो गया तथा ऋषि ने पारलौकिक और अलौकिक शक्तियों द्वारा विरोधी असुरों को वश मे कर लिया। इसी अथर्वन ऋषि के अंगिरा और भृगु के वंश वालों

को जो मंत्र मिले उन्हीं की संहिता का नाम अथर्ववेद था, अथर्वांगिरिस वेद पड़ा।"[१]

इस अवतरण के द्वारा अथर्वन ऋषि के चरित्र की झलक मात्र ही उपलब्ध हो पाती है। इस ऋषि को ब्रह्मा ने स्वयं ब्रह्मविद्या प्रदान की थी। इसका प्रसंग 'मुंडकोपनिषद' में मिलता है।

"अथर्वणेयां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविधाम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥

मु० उ० १।२

अर्थात् अथर्वा ऋषि को जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मा से मिली थी, वही ब्रह्मविद्या उन्होंने अंगी ऋषि को बतलायी थी और अंगी ने भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुए सत्यवह नामक ऋषि को वही विद्या बतलायी। भारद्वाज ने परम्परा से चले आते हुए ब्रह्म के तथा अपर रूप को अंगिरा ऋषि से कहा था।

उपनिषदों में भी जीवनियाँ मिलती हैं। मरीचि, अंगिरस आदि महर्षियों का चरित्र पूर्णरूपेण अंकित है। तैत्तिरीयोपनिषद में भृगु ऋषि का जीवनचरित्र वर्णित है। भृगु वरुण के पुत्र थे। उनके मन में परमात्मा-विषयक ज्ञान को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी। इसी प्रकार के अनेक वृत्तान्त इन उपनिषदों मे प्राप्त होते हैं।

अब संस्कृत साहित्य में उपलब्ध जीवनी-तत्वों पर विचार कर लेना चाहिए। संस्कृत साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'रामायण'। 'रामायण' संस्कृत साहित्य का आदिकाव्य ग्रंथ कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में राम के 'चरित' का वर्णन हुआ है। रामायण से कुछ स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं :

(१) प्राप्त राजस्थ रामस्य वाल्मीकिर्भगवान ऋषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्र पदमर्थवत॥[२]

(२) चरितं रघुनाथस्य क्षत कोटि प्रविस्तरम्।[३]

राम के चरित्र को लेकर संस्कृत में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। इन समस्त काव्यों में राम का महापुरुषत्व प्रकट होता है। इन काव्यों में राम की जीवनी बड़े व्यापक रूप में वर्णित हुई है। युगों से राम के चरित्र की पावन गंगा में

---

१. हिन्दुत्व, पृ० ५१-५२
२. वही, पृ० १२९
३. वही, पृ० १२९

अवगाहन कर भारतीय जनता कल्याण के पथ पर अग्रसर हो रही है। भारत की अनेक भाषाओं में रामकथा का वर्णन मिलता है।

रामायण के बाद जीवनी की दृष्टि से 'महाभारत' भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कौरव और पांडवों के वर्णन में 'महाभारतकार' ने इन महापुरुषों के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है। 'नैषधीयचरित', 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों में भी जीवनी के सूत्र प्राप्त होते हैं।

संस्कृत साहित्य के पश्चात् पाली साहित्य में उपलब्ध जीवनी साहित्य पर विचार कर लेना आवश्यक है। पाली का लगभग समस्त साहित्य भगवान् बुद्ध के उपदेशों से भरा पड़ा है। पाली भाषा में बुद्ध के चरित्र का वर्णन बड़ी व्यापकता और कलात्मकता के साथ हुआ है। बुद्ध के चरित्र और उपदेशों को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन तीनों उपविभागों के मिले हुए रूप को 'त्रिपिटक' के नाम से पुकारा जाता है। इन तीनों विभागों के पृथक्-पृथक् नाम हैं :

सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक।[१] पाली साहित्य के विद्वान् अभी तक प्रामाणिक रूप से इनका रचनाकाल निश्चित नहीं कर सके।[२] सुत्त पिटक पाँच (निकाय) वर्ग का संग्रह है।[३] सुत्त पिटक के पाँच निकाय इस

---

१. The Buddhist Pali scriptures contain three different collections the Sutta (Containing doctrines) the Vinaya (Relating to the discipline of the monks), and the Abhidhamma (relating generally to the same subjects as the Suttas but dealing with them in a scholastic and technical manner).

Dr. S. N. Das Gupta: A History of Indian Philosophy, Vol. I, Ed. 1951, p.82

२. Scholars of Buddhistic religious history of modern times have failed as yet to fix any definite dates for the collection or composition of the different parts of the aforesaid canonical literature of the Buddhists.

Ibid

३. The Suttas contain five groups of collection called Nikayas. These are (i) Digha Nikaya, (ii) Majjhim

प्रकार हैं : (१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय और (५) खुद्दक निकाय ।

विनय पिटक के प्रमुख तीन भाग हैं (१) सुत्त विभंग (२) खन्दक (३) परिवार ।

अभिधम्म पिटक के सात प्रमुख अंग हैं: (१) धम्म सगणि, (२) विभंग, (३) धातु कथा, (४) पुग्गल पंजति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान ।

इस समस्त साहित्य में बुद्ध के चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है । बुद्ध के चरित्र के साथ-साथ उनके शिष्यों के चरित्रों का भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध होता है । 'थेरगाथा' और 'थेरीगाथा' में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है ।

'दीघ निकाय' 'सामञ्ञ फल सुत्त (दीघ १।२) में पिता के वध होने के बाद अजातशत्रु पश्चात्ताप से संतप्त शांति प्राप्त करने के हेतु भगवान बुद्ध के पास जाता है। भगवान बुद्ध और अजातशत्रु के वार्तालाप के मध्य दोनों के चरित्र प्रकाश में आते है ।[१] इसी प्रकार 'दीघ निकाय' के 'अम्बट्ठ सुत्त (दीघसु १/२) में पौष्कर साति नामक ब्राह्मण के अम्बष्ट नामक शिष्य का चरित्र भी सवाद प्रकरण में पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है ।[२]

'महावग्ग' के 'महापदान सुत्त' (दीर्घ २।१) में बुद्ध के छह पूर्ववर्ती बुद्धों यथा विपस्सी (विपश्यी), सिखी (शिखी), वेस्सभू (विश्वभू), भद्रकप्ल, ककुसन्ध (क्रकुच्छन्द) और कोणागभन की जीवनियों का वर्णन है । इनमें ऐतिहासिक तत्व कुछ भी नही है । किन्तु जीवनी के तत्व उपलब्ध होते हैं ।[३]

'महापरिनिब्बाण सुत्त' (दीघ ३।२) में भगवान बुद्ध के अंतिम दिनों का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है । इन प्रसंगों में जीवनी के समस्त तत्व अपने निखरे हुए रूप में प्रकाश में आते हैं ।[४]

समस्त पालि साहित्य में जीवनियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं । अतः पालि साहित्य में अन्य साहित्यों की अपेक्षा जीवनियों का बाहुल्य रहा है । पालि

Nikaya, (iii) Sanyutta Nikaya, (iv) Anguttara Nikaya, (v) Khuddaka Nikaya. Ibid

१. भरत सिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृ० १३७

२. वही, पृ० १३८ ३. वही, पृ० १४३ ४. वही, पृ० १४४

साहित्य की जीवनियों के आधार पर ही जीवनी साहित्य का विकास विदेशों में भी हुआ था।[1]

महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों के प्रचार के लिए अपभ्रंश को माध्यम बनाया था। महावीर स्वामी तथा अन्य जैन तीर्थंकरों के चरित्रों का विवरण अपभ्रंश-साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। जैन वाङ्मय के निम्नलिखित प्रमुख भाग हैं :

(१) द्रव्यानुयोग (२) गणितानुयोग
(३) चरणकरणानुयोग (४) धर्म कथानुयोग

उपर्युक्त भागों में चतुर्थ में कथा और चरित्रों का वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त प्रद्युम्न चरित, पउम चरित आदि प्रसिद्ध ग्रंथों में भी जीवनी की अभिव्यक्ति हुई है। जीवनी-साहित्य के विकास में जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

हिन्दी जीवनी साहित्य (उत्तरार्ध)

हिन्दी साहित्य की धारा चिरकाल से अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। हिन्दी का विकास अपभ्रंश भाषा से हुआ है। उसी प्रकार जिस प्रकार कि अपभ्रंश का प्राकृत से, प्राकृत का पाली से और पालि का संस्कृत से विकास हुआ है। इस प्रकार हिन्दी भाषा उन समस्त बोलियों की उत्तराधिकारिणी कही जा सकती है जो अपभ्रंशकाल की समाप्ति पर जन भाषा के रूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता निर्धारित करने के लिए प्रयत्नशील हो गई थी। साधारणतः 'भ्रष्ट हुई भाषा' को ही अपभ्रंश कहा जा सकता है। जब भाषा पर व्याकरणिक रूपों को लादकर उसे क्लिष्ट बना दिया जाता है, तो सामान्य जनता सरलता के अनुसार उसी भाषा के आधार पर अपनी एक बोल-चाल की भाषा निर्मित कर लेती है। प्राकृत के साथ भी यही बात लागू होती है। आवश्यकता के अनुसार जब जनता ने प्राकृत के स्वरूप को विकृत कर दिया, तब उसी क्षण सम्भवतः अपभ्रंश भाषा का जन्म हुआ होगा। अपभ्रंश का विकास सम्भवतः ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ होगा। अपभ्रंश भाषा का जन्म पश्चिम में हुआ, वहीं पली और वहीं पुष्पित भी हुई। जैन आचार्यों ने इसी भाषा के माध्यम से अपने उपदेशों को जनता तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। जितना भी साहित्य आज अपभ्रंश में उपलब्ध है, उसका श्रेय जैन आचार्यों

---

१. भरत सिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ३२०

और आभीरों को है जिन्होंने इस भाषा को हृदय से लगाकर इसका सत्कार किया। अपभ्रंश पहले एक जन भाषा के रूप में ही सम्मुख आयी, किन्तु छठी शताब्दी में इसे साहित्यिक भाषा का पद प्राप्त हो गया। अपभ्रंश का प्रयोग सिंध और पंजाब में अधिक होता था। इस भाषा का अस्तित्व १२वीं शताब्दी तक मानना चाहिए। अपभ्रंश भाषा को राजाश्रय भी मिला जिससे यह उन्नति के शिखर पर पहुँच गई। अपभ्रंश का रिक्त भंडार, राज्य भाषा होते ही भर गया।

भाषाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने अपने जीवन-काल में अनेक भाषाओं की उन्नति और अवनति देखी है। विक्रम की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अपभ्रंश के रूप में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। इसी समय से अन्य भाषाएँ भी अपने स्वरूप को निर्धारित करने के लिए जाग-रूक होने लगीं। इन भाषाओं के स्वरूप निर्धारण के मूल में भी जन-रुचि और सरलता, इन दोनों तत्वों का प्राधान्य था। शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, नागर अपभ्रंश से राजस्थानी, मागधी से बिहारी और बंगाली आदि भाषाएँ प्रस्फुटित हुईं।

अतः इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के विविध रूपों का विकास अपभ्रंश भाषा के भग्नावशेषों से ही हुआ है। इसके पूर्व संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में जीवनी के विकास पर विचार हो चुका है। अब हिन्दी में जीवनी साहित्य पर विचार करना है।

संधिकाल के समाप्त होते ही चारणकाल का प्रारम्भ होता है। चारणकाल का समय संवत् १००० से १३७५ तक माना जाता है। सर्वप्रथम हमें चारण-काल की परिस्थितियों पर विचार कर लेना आवश्यक है। सातवीं शताब्दी के समाप्त होते ही हिन्दू-राज्यों की सत्ता भी समाप्त होने लगी थी। आपस में संघर्ष बराबर चल रहा था। विदेशी आक्रमणकारियों को इससे लाभ हुआ। परिणामस्वरूप १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते लगभग उत्तरी भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। यह शताब्दी भारत के प्राचीन गौरव एवं वैभव के इतिहास का अंतिम समय था। इस युग में शक्ति का अभाव और विवशता सर्वत्र देख पड़ती थी। इस समय का इतिहास अनेक छोटे-छोटे राज्यों के उत्थान और पतन की करुण कहानी थी। ये विनाश की दिशा में अग्रसर होते हुए राज्य छोटी-छोटी बातों पर प्रायः झगड़ते रहते थे। आठवीं शताब्दी में काश्मीर और कन्नौज में परस्पर खूब संघर्ष हो चुका था। देवपाल

और विजयपाल के समय में ही कन्नौज का अधःपतन हो चुका था। गुजरात भी हिन्दुओं का एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। गुजरात इस समय धन और वैभव का केन्द्र था, कारण कि अन्य राज्यों की अपेक्षा गुजरात की व्यापारिक स्थिति अत्यन्त संतोषजनक थी। गुजरात के शासक भीमदेव के समय (१०७१-११२०) में ही महमूद गजनवी का आक्रमण सोमनाथ के मंदिर पर हुआ था। इसी शासक के राज्यकाल मे कई बार गुजरात की समृद्धि विनष्ट हुई थी। भीमदेव के बाद सिद्धराज राजा हुआ जो संघर्षों में ही लगा रहा और अंत मे अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा संवत् १३५५ मे यह राज्य नष्ट कर दिया गया। १२वी शताब्दी में सोलंकियों के द्वारा पँवारों का राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। सवत् १२३८ मे चंदेलों का वैभव पृथ्वीराज के साथ-साथ समाप्त हो गया और संवत् १२५० तक कालिंजर भी मुसलमान सम्राटों के हाथ में पहुँच गया। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते तोमर, चौहान, गहलोत, आदि वंशों का वैभव विनष्ट हो चुका था। इस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ बड़ी अनिश्चित थीं। पारस्परिक कलह ने उनकी प्रगति को बिल्कुल रोक दिया था। राजस्थान में स्वदेशाभिमान की मात्रा चौहान वश के कारण विशेष बढ़ी और राजनीति मे राजा के साथ प्रजा ने भी साभिमान भाग लिया। इसीलिए राजा का यश गाने वाले चारण आदि राजदरबार मे जाकर वीरों को अपनी ओजस्विनी कविता से प्रोत्साहित कर स्वय भी लड़ते थे। ऐसे चारणों की रचनाएं घर-घर गायी जाती थी। वे जिस उत्साह से लिखी जाती थीं, वह चारणों का स्वाभाविक उद्‌गार होता था। वे बड़े ओज और गर्व से वीररस से ओत-प्रोत अपनी रचनाएं सुनाते थे।"[1] इन वीरो के यशोगान में उनके चरित के अनेक पक्ष प्रकाश मे आ जाते थे। चारणों द्वारा निर्मित इस प्रकार के साहित्य का प्रमुख ध्येय था, वीरों के जीवनवृत्त और अन्य विशेष गुणों का प्रकाश में आना। स्पष्ट है कि इस युग में जो वीर प्रशस्तियाँ बनीं उनमें अनेक वीरों के जीवन चरित्र वर्णित हैं। इन वीरों की गाथाओं में जीवनी-साहित्य के लगभग समस्त महत्त्वपूर्ण तत्व विद्यमान है। वीरगाथा अथवा चारणकाल में निम्नलिखित जीवनी ग्रंथों की रचना हुई थी :

(१) खुमान रासो, ले० दलपति विजय संवत् ८८७

(२) बीसलदेव रासो, नरपति नाल्ह संवत् १३ शताब्दी

---

१. डा० राम कुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० १०३

(३) पृथ्वीराज रासो, चन्दवरदाई १२४९ वि०
(४) पृथ्वीराज विजय, जयानक संवत् १२३५-१२५७
(५) जयचन्द्र प्रकाश, भट्ट केदार संवत १२२५ वि०
(६) जय मयंक जय चंद्रिका, मधुकर संवत् १२४०
(७) आल्हखंड, जगनिक संवत् १२३०
(८) हम्मीर रासो, सारंगधर संवत् १२५७

इस सूची से स्पष्ट हो जाता है कि चारणकाल मे वीरों के यशोगान के लिए अनेक परिचयात्मक ग्रंथों की रचना हुई थी। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जिनमें नायक अथवा नायिका के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है :

(१) अचलदास खीची री वचनिका सिवदास री कही
(२) महाराज गंजसिंह जी रौ रूपक
(३) गोरा बादल री बात
(४) राव छत्रसाल रा दूहा
(५) जस रत्नाकर आदि

इन ग्रंथों मे वीरों के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इन कवियों की दृष्टि चरित्रनायक के गुणों की ओर अधिक गयी है। कुछ भी हो, जीवनी के दृष्टिकोण से ये ग्रंथ महत्त्व के है।

वीरगाथा काल के समाप्त होते ही साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन परिवर्तन दिखायी पड़ने लगा। वीर हिन्दू राजाओं की सत्ता के साथ-साथ वीर प्रशस्तियाँ भी समाप्त हो चुकी थीं। मुसलमानी तलवारों के सम्मुख अनेक हिन्दू सम्राट घुटने टेक चुके थे। फलतः चारणों को आश्रय देने वाला अब कोई नही रह गया था। अब हिन्दू राजाओं के पास न बल था और न साहस ही। यवन शासक अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। देश में सर्वत्र उच्छृंखलता का साम्राज्य था। हिन्दू सम्राटों में किसी प्रकार का एका न था और न उनमें अब वह शौर्य रह गया था जिससे वे मुस्लिम सम्राटों का विरोध करते। मूर्ति खंडित होते देखकर हिन्दुओं के हृदय से मूर्ति-पूजा की भावना का भी तिरोभाव धीरे-धीरे हो रहा था, कारण कि मूर्ति-भंजक यवन बराबर सुख और चैन की जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। फिर भी उन्हें ईश्वर की शक्ति पर पूरा भरोसा था। हिन्दुओं के भग्न होते हुए हृदय को सांत्वना

देने वाला भी इस समय कोई नहीं था। भगवान भी अब भक्तों की ओर ध्यान दिखायी देते न थे। वीरता का तिरोभाव होकर, अब भक्ति और विजय के रूप में प्रस्फुटित हो रही थी। मुस्लिमों के अत्याचारों से हिन्दुओं के हृदय में भगवान के प्रति अखंड विश्वास का जागृत होना स्वाभाविक ही था। धीरे-धीरे तलवार के रिक्त स्थान को माला और भक्तों की खंजरी ने पूर्ण किया। इस प्रकार हिन्दू जाति के लिए केवल एक निर्बल का बल भगवान का नाम ही रह गया था। "काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती है।"[१] अतः इस युग में अनेक महात्मा (भक्तिकाल में) अवतरित हुए जिन्होंने हिन्दुओं के भग्न हृदय को सँभाला और उन्हें भक्ति-मार्ग पर अग्रसर होने का उपदेश किया। इस प्रकार सं० १३७५ से भक्तिकाल का प्रारम्भ होता है।

भक्ति की धारा चार प्रवाहों में बह निकली। संत काव्यधारा, प्रेमकाव्य धारा, रामकाव्य धारा और कृष्णकाव्य धारा। इन चारों धाराओं के पवित्र गंगाजल सदृश साहित्य में अवगाहन कर भारतीय जनता शांति का अनुभव करने लगी। इस युग के तीन सौ वर्षों में कबीर, तुलसी, सूर, मीरां जैसी महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं जिनकी रचनाओं से हिन्दी साहित्य धन्य और धनी बना। इन महान् विभूतियों के चरित्रों ने न केवल देश, जाति को ही प्रभावित किया वरन् समस्त मानवता को एक नवीन आदर्शमय मार्ग भी दिखाया। इन भक्त कवियों के उज्वल चरित्र और कल्याणकारी संदेशों से प्रभावित इनके शिष्यों, अनुयायियों ने इनके व्यक्तित्व को समाज के सम्मुख 'जनहिताय' की भावना से रखा। संतों के जीवनचरित समय-समय पर लिखे गए जो 'परिचयी' के नाम से विख्यात हुए। संत कवियों की 'परिचयी' मुख्य-मुख्य निम्नलिखित है :

(१) कबीर जी की परचै
(२) पीपा जी की परचई
(३) नामदेव जी की परचै
(४) सेऊ समन की परची
(५) त्रिलोचन की परचई
(६) गोपीचन्द की परचई
(७) भरथरी की परचई
(८) रैदास की परचई

---

१. डा० श्याम सुन्दरदास : कबीर ग्रंथावली, भूमिका, पृ० १

(९) हरिदास जी की परचई
(१०) सेवादास की परचई
(११) मलूकदास की परचई
(१२) जगजीवन साहब की परचई
(१३) चरनदास जी की परचई
(१४) दादू जन्म लीला परचई
(१५) रंकाबंका की परचई

भक्तकाल में भक्तों के जीवन से सम्बद्ध ग्रंथ भी रचे गए। वे निम्न-लिखित है :

(१) भक्तमाल
(२) राम रसिकावली
(३) भक्त-विनोद
(४) २५२ वैष्णवन की वार्ता
(५) ८४ वैष्णवन की वार्ता
(६) अष्ट-सखान की वार्ता
(७) गोसाईं चरित्र
(८) भक्तविनोद आदि

इन समस्त ग्रंथों में भक्तों के जीवन-चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'भक्तमाल' में लगभग २०० भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया गया है। इन चरित्रों के वर्णन में भक्त कवि नाभादास ने बड़ी सतर्कता से काम लिया है। चरित्रों के वर्णन में सर्वत्र कवि की भक्ति-भावना और श्रद्धा दृष्टिगत होती है।

भक्तमाल का मूल्यांकन

'भक्तमाल' भक्तों की एक ऐसी माला कवि ने पिरोयी है जिसका यदि एक भी नग हटा लिया जाय तो सम्भवतः उसका स्वरूप विकृत हो जायेगा। जीवनी साहित्य के क्षेत्र में 'भक्तमाल' एक नवीन परम्परा का द्योतक है। अभी तक जितने भी ग्रंथ जीवनी से सम्बद्ध लिखे गए थे, उनमें और 'भक्तमाल' में महान् अन्तर है। कवि नाभादास ने निष्पक्षता के साथ जिस भक्त का जैसा रूप था, वैसा ही वर्णन किया है।

'भक्तमाल' को जब अन्य जीवन चरित्रों से सम्बद्ध ग्रंथों के समक्ष रखते हैं तो सर्वप्रथम जो अन्तर दृष्टिगत होता है वह यह है कि अन्य कवियों और

कवि नाभादास के जीवनी-लेखन के दृष्टिकोण में अन्तर था। चारण-काल के कवियों की भांति कवि नाभादास ने अपने को प्रशंसा तक ही सीमित नहीं रखा। कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास ने यथातथ्य भक्तों की प्रशंसा की है। समस्त भक्तों के प्रति कवि के हृदय में समान श्रद्धा और भक्ति थी। कवि ने 'नर-चरित्र' का गान न करके भक्तों के उज्वल, निष्कलंक चरित्रों का ही वर्णन किया है। दूसरा अन्तर यह है कि 'भक्तमाल' में भक्तों के जीवन का सांगोपांग वर्णन नहीं किया गया। नाभादास ने भक्त का नाम बताकर उसके जीवन की किसी घटना के वर्णन तक ही अपने को सीमित रखा है। सम्भवतः कवि का उद्देश्य यह न रहा हो कि भक्तों के जीवन का सांगोपांग वर्णन किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि नाभादास ने भक्तों के प्रति श्रद्धा और सम्मान की श्रद्धाजलि अर्पित की है। कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कवि ने 'भक्तमाल' के द्वारा लगभग २०० भक्तों के जीवन पर प्रकाश डाला है।

हेराल्ड निकल्सन ने जीवनी के दो रूप माने है विशुद्ध और अशुद्ध जीवनी। कवि ने विशुद्ध जीवनी नहीं लिखी। कारण कि 'भक्तमाल' में न तो ऐतिहासिकता का अधिक ध्यान दिया गया है और न क्रमबद्धता पर ही। कवि ने भावुकता के माध्यम से भक्तों का वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ग्रंथ का अपना महत्त्व है। डा० दीन दयालु गुप्त ने कहा है कि, "नाभादास जी ने जो वृत्तान्त इस ग्रंथ में दिये है, वे बहुत अपूर्ण और केवल भक्तों की महिमा-सूचक है, फिर भी हिन्दी के भक्त कवियों का जो कुछ भी वृत्तान्त इस ग्रंथ में दिया हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।"[१] 'भक्तमाल' में 'कलियुग' के भक्तों के वर्णन में कवि ने क्रमबद्धता का कोई विशेष ध्यान नहीं रखा। हो सकता है कि ज्यों-ज्यों कवि को भक्त याद आते गए हों वह छप्पय बनाकर भक्तमाल में रखता गया हो। इसका आधार भी है।" भक्तमाल रूपी रत्न को स्वयं नारायण दास (नाभादास) जी ने गोविन्द नामक भक्त को कंठस्थ करा दिया और गोविन्द भक्तमाली का वर्णन 'भक्तमाल' में लिखा है।[२] हो सकता है कि जब यह ग्रंथ अधिक लोकप्रिय हुआ हो तो कुछ छप्पय समय-समय पर बढ़ा दिए गय हों। नाभादास द्वारा लिखित 'भक्तमाल' में जितनी जीवनियां

---

१. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९

२. गोविन्द 'भक्तमाली' के सम्बंध में 'भक्तमाल' में लिखा है कि
'भक्त रत्नमाल सुधन गोबिन्द कंठ बिकास किया।
रुचिर सीलधन नील लील रुचि, समति सरितपति।

है उनमें अशुद्ध, विशुद्ध जीवनी के कुछ न कुछ तत्त्व अवश्य मिलते है ।

भक्तों की जीवनी के अतिरिक्त इसके रचयिता ने भक्तों का संक्षेप मे व्यक्तित्व-दर्शन भी देने का प्रयास किया है । नाभादास ने कुछ भक्तों के अलौकिक और चमत्कारपूर्ण कृत्यों का भी वर्णन किया है । ऐसे वर्णनों के माध्यम से कवि चाहता था कि भक्तों के चरित्रों का तात्कालिक प्रभाव जनता पर पड़े । अब कुछ भक्तों के चामत्कारिक कृत्यों का उल्लेख भी करना आवश्यक है । 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार पयोहारी जी ने आग की धूनी को अपनी लंगोटी में उठा लिया था, योगियों के महन्त का गधा बना दिया था और उनके प्रभाव से योगियों की मुद्राएँ अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्र हो गई थी ।"[१] कील्ह देव के विषय मे नाभादास जी ने लिखा है कि, "उन्होंने 'भीष्म पितामह' की भाँति ही मृत्यु को स्ववश मे कर लिया था ।"[२] नाभादास ने अन्य भक्तों के विषय में भी कुछ इसी प्रकार की घटनाओं का उल्लेख किया है ।

जीवनी के तत्वों मे लगभग सभी तत्व 'भक्तमाल' की संक्षिप्त जीवनियों में उपलब्ध होते है । कवि (नाभादास) ने विशेष भक्तों के चरित्रों का ही उल्लेख किया है, व्यक्तित्व अंकन में कवि कल्पना का सहारा नही लेता, इसका प्रमाण यह है कि 'भक्तमाल' मे वर्णित चरित्र लगभग सभी ऐतिहासिक है । कहने का अभिप्राय यह है कि जिस भक्त का जैसा स्वरूप था, नाभादास ने वैसा ही उसे दिखा दिया । अधिकांश मे कवि ने भक्तों के जीवन का यथार्थ चित्रण ही किया है ।

'भक्तमाल' भक्तों के चरित्रों से सम्बद्ध एक ऐसा ग्रंथ है जिसके द्वारा जिज्ञासु अन्वेषकों का पथ-प्रदर्शन होता है । नाभादास को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली । जनता के मध्य इन भक्तों का आदर दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा ।

बिबिध भक्त अनुरक्त व्यक्त, बहु चरित चतुर अति ।
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुद्धि उचारन ।"

१. **डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव : रामानन्द सम्प्रदाय में योग, पृ० ७९**
(आलोचना)

२. **वही, पृ० ८०**

सप्तम परिच्छेद

काव्य-कला के दृष्टिकोण से भक्तमाल का मूल्यांकन

काव्य का उद्‌गम

मनुष्य का हृदय अनेक भावनाओं, विचार-धाराओं और अनुभूतियों का केन्द्र हुआ करता है। वह अपने व्यक्तित्व को अपने तक ही सीमित न रखकर दूसरों पर प्रकट करने का अभिलाषी, इच्छुक रहा करता है। अपने सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि को वह दूसरों तक पहुँचाकर, उन्हें भी उसी स्थिति का अनुभव कराने के लिए सतत प्रयत्नशील दृष्टिगत होता है। अपने को बताने और दूसरे के प्रति जानने का सुखद मोह मनुष्य त्याग नही सकता। हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त कर, दूसरे तक अपने अनुभव को पहुँचाकर, उसे आनन्दित करना ही काव्य की जननी है।[1] मानस में उठे हुए अनुभूतियों के तूफान को जब मनुष्य रोक नहीं पाता, तभी वह प्रबल प्रवेग, शब्दों के माध्यम से हमारे सम्मुख काव्य के रूप में आ उपस्थित होता है। चन्द्र की सुरम्य ज्योत्सना में, बालारुण की विकासोन्मुख प्रभा में, विद्युत की दमक में, प्रकृति के दिव्य क्रोड़ में, विचरते हुए कवि के हृदय में मनोहारी काव्य स्वतः अपने रूप का निर्माण कर लेता है। किन्तु कवि अथवा महाकवि इस भावोद्रेक के वैज्ञानिक कारण बताने में असमर्थ हैं।

मनुष्य के हृदय में विकल क्रंदन और आनन्द का स्वर उसके जीवन के प्रथम काल से ही गुंजारित होता रहता है। उसका जीवन विविध प्रकार के अनुभवों का केन्द्र स्थल है। "उसके जीवन का सौन्दर्य अतीव वैचित्र्यपूर्ण है। उसके हृदय में नित्यप्रति ही भावों के इन्द्रधनुष बना और मिटा करते हैं। उसके मानस में भावों एवं मनोवेगों के ज्वार-भाटा का उत्थान-पतन होता ही रहता है। हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुःख, वैभव-दरिद्रता आदि के जीवित

---

१. अरस्तू : पोयटिक्स

इतिहास का नाम ही मानव-जीवन है । जीवन आनन्द और विषाद की ही अनुभूति है । कवि इस विशाल संसार के रंगमंच का अमर गायक है । काव्य हमारे हृदय की श्वास है ।"[१] कवि हृदय में उठे हुए भावों की तीव्रता और गहनता को रोक नहीं पाता । वह अपने चारों ओर फैले हुए वातावरण में अनेक दृश्य देखता है, दृश्यों के अवलोकन के परिणामस्वरूप उद्‌भूत अनुभूतियों का व्यक्तीकरण ही काव्य है । सुख अथवा दुःख की व्यापक अनुभूति भूमि पर ही काव्य जगत का निर्माण होता है । क्रौंच पक्षी के मृतक शरीर को देखकर, दुःखातिरेक में अनायास ही आदि कवि वाल्मीकि के मुख से निम्नलिखित पंक्तियाँ आदि काव्य के रूप में प्रस्फुटित हुई थीं :

"मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम गमः शाश्वतीः समाः"

मानव अपने करुण दुःखमय इतिहास को जानकर, समझ कर, दूसरों को भलीभाँति इसका रहस्य समझाना चाहता है । अपनी अनुभूतियों के माध्यम से, वह (मनुष्य, कवि) अपने अनुभव को साकार रूप प्रदान कर, काव्य के रूप में हमारे सम्मुख रखता है । आदि कवि के उद्‌गारों के पीछे भी यही दुःखानुभूति कार्य करती दीख पड़ती है । यही कारण है कि युग-युगों से मनुष्य अपनी कहानी को काव्य के माध्यम से गाता चला आ रहा है ।

मनुष्य स्वयं एक सजीव कविता है । महादेवी जी के शब्दों में, "वह (मानव) एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और, इस संसार से अधिक सुन्दर, सुकुमार संसार बसा रखा है । मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं, उसका बाह्याकार पार्थिव अथवा सीमित संसार का भाग है और अन्तस्थल अपार्थिव असीम का । एक उसको विश्व में बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है । जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार शून्य है । इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है ।"[२] कवि अपने हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करते समय कल्पना का भी सहारा लेता है और तभी काव्य, अपने में आनन्द को समावेशित कर हमारे सम्मुख आता है । काव्य के क्षेत्र में तर्क प्रवेश नहीं पा सकता, कारण कि वह हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं ।

काव्य स्वयं उत्पन्न होता है । उसकी सृष्टि के लिए किसी प्रकार के परिश्रम

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २४३-४४

२. रश्मि—अपनी बात

की आवश्यकता नहीं । वह स्वतः निर्झर के समान हृदय से फूट निकलती है । अनुभूतियों की गहनता और व्यापकता का प्रस्फुटित रूप ही कविता है । कोमल एवं सुखद भावनाओं के सुमधुर संस्पर्श से, अनुभूति से जाग्रत हो अथवा चौंककर अंतस के अन्तर्गत अव्यक्त अहम् जब अपने परिज्ञापन के हेतु व्याकुल या व्यग्र हो उठता है तभी तो मानव कवि बन बैठता है । अतएव पीड़ाओं के पर्दे में सन्निहित रहने वाला मानव का 'अहम्' जब परिज्ञापन के लिए व्याकुल हो उठता है तभी वह कवि बन जाता है । सुमित्रानन्दन पंत ने कहा है कि :

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान ।"

रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की प्रेरक मनोवृत्तियों में से निम्नलिखित को प्रमुख माना है[1] :

१. आत्माभिव्यंजना
२. सौंदर्यप्रियता
३. वह वृत्ति जिसके कारण मन कोमलता, मधुरता आदि की ओर झुकता है ।
४. कौतुक-प्रियता

यह समस्त विश्व उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति है और काव्य हमारी अनुभूतियों की । हमारी अनुभूतियाँ अंतस में विह्वल होने पर स्वरूप धारण के लिए व्यग्र हो उठती है और काव्य के रूप में प्रकट हो जाती हैं । एक पाश्चात्य विद्वान ने काव्य की उत्पत्ति के दो प्रमुख कारण माने है (क) बचपन से अनुकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभावतः होती है । काव्य अनुकरण का एक विशिष्ट रूप है । हम सूर्य की लाली देखते है और उसका वर्णन कल्पना का सहारा लेकर कर देते हैं । (ख) तत्वज्ञानी अपने आनन्द की वृद्धि के लिए काव्य की सर्जना करते है ।[2]

काव्य क्या है

कविता की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यादर्श, पृ० २, ३
२. अरस्तू : पोयटिक्स, पृ० ९

(१) वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्[१]

(२) रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[२]

इन परिभाषाओं में संस्कृत के विद्वान आचार्यों ने रस और रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है।

(३) संगीतपूर्ण विचार का नाम काव्य है[३]

(४) सौंदर्य की लय-पूर्ण सृष्टि काव्य है[४]

इन उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों ने सौंदर्य के व्यक्तीकरण के माध्यम को काव्य माना है।

(५) कविता जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है[५]

जैसा कि 'भक्तमाल' के नाम से ही विदित होता है, यह ग्रंथ भक्त चरित्रों की एक शृंखला-सदृश है जिसमें अनेक भक्तों के चरित्र ग्रंथ दिये गए हैं। देवी और मानवीय, काल्पनिक एवं अस्तित्व रखने वाले सभी प्रकार के चरित्र 'भक्त माल' में वर्णित हैं। "भक्तों की जीवनी में कुछ न कुछ चमत्कार का उल्लेख करना एक नियमित प्रथा-सी हो गई है और वस्तुतः भक्त जीवन में चामत्कारिक घटनाओं का होना आश्चर्य भी नहीं है।[६] नाभादास ने भी 'भक्तमाल' में जिन चरित्रों का उल्लेख किया है उनमें यत्र तत्र चामत्कारिक विवरण मिल ही जाते हैं।

नाभादास के कवित्व का उद्देश्य भक्तों का गुणगान करना था। वे भक्त चरित्रों के गुणगान को भव-बंधनों के विनाश का सुलभ और सरल उपाय समझते थे। नाभादास की दृष्टि में भक्त इस विश्व मे उस परब्रह्म के अवतार सदृश थे जिसकी पूजा-अर्चना में जड़ और चेतन, दोनों ही तत्पर है। नाभादास का उद्देश्य था जनता के मध्य भक्ति-भावना का प्रसार। यही कारण है कि उन्होंने काव्य को केवल अलंकारों तक ही सीमित नहीं रखा। जिन भावों के व्यक्तीकरण के लिए कवि नाभादास ने काव्य को माध्यम बनाया था उसमें

---

१. विश्वनाथ : साहित्य दर्पण

२. पंडितराज जगन्नाथ : रस गंगाधर

३. ड्राइडन द्वारा प्रतिपादित वाक्य

"Poetry is articulate music"—Drydon

४. एडगर ऐलेनपो द्वारा प्रतिपादित वाक्य

५. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित वाक्य

६. कल्याण भक्त चरितांक, पृ० ८०७

उन्हें पूर्णतया सफलता मिली। रीति-कालीन कवियों की भाँति उन्होंने अलंकारों की दमक से अपने काव्य पर रंग चढ़ाने का प्रयास नहीं किया, वरन् जो स्वतः आ गए, उन्हीं तक अपने को सीमित रखा। यथार्थ में कवि का ध्येय काव्य में अलंकारों की झड़ी लगाना नहीं था, वह तो साधारण भाषा के माध्यम से जन जीवन में अपना संदेश पहुँचाने का इच्छुक था। इस दिशा में कवि की पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। नाभादास के द्वारा वर्णित चरित्रों में समाज-कल्याण के तत्व निहित है, मानव समाज के प्रभावित करने की शक्ति है और है मानवता को सन्मार्ग पर लाने का तथा भक्ति के सहारे भगवान तक पहुँचने का एक उदात्त संदेश।

नाभादास की काव्य-दृष्टि को भली भाँति समझने के लिए उनके 'भक्तमाल' को निम्नलिखित कुछ प्रमुख शीर्षकों में विभाजित कर लेना अधिक उपयुक्त होगा --

(क) भाव-प्रकाशन
(ख) अभिव्यंजना शक्ति
(ग) कल्पना की उत्कर्ष
(घ) रस परिपाक
(च) चरित्र चित्रण की शक्ति
(छ) रचना-शैली

हिन्दी संतों और भक्तों का काव्यादर्श है, काव्य के माध्यम से उपदेश देना अथवा जनता तक जन-कल्याण का संदेश पहुँचाना। इन भक्त कवियों को कवि कहने की अपेक्षा यदि मानवता का अग्रदूत अथवा सुधारक कहा जाय तो अधिक उचित होगा। कारण कि इन भक्त और संत कवियों का ध्येय केवल कविता करना न था, वरन् कविता को वे अपने उपदेश का माध्यम मानते थे।

काव्य और संगीत का घनिष्ट सम्बंध है। दोनों ही हमारी रागात्मिका वृत्ति से सम्बद्ध हैं। काव्य में स्वतः संगीत-तत्व आकर, उसे प्रभावशाली बना देता है। मानव ही क्या, बन के पशु-पक्षी भी संगीत लहरी से उन्मत्त हो अपने जीवन तक को खो बैठते हैं। यही कारण है कि गद्य की अपेक्षा पद्य का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर अधिक प्रभाव डालता है। यही कारण है कि भक्त कवियों ने अपने उपदेश को काव्य के माध्यम से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने के कारण इन संतों और भक्तों के उपदेशों को स्थायित्व प्राप्त हो गया।

भक्त कवियों के काव्य में कला-पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रधानता है। इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि वे कला-पक्ष को काव्य में प्रमुख स्थान देकर अपने पांडित्य का प्रकाशन नहीं चाहते थे। ये भक्त कवि स्वभावतः आत्म-प्रशंसा और आत्म-ख्याति में अरुचि रखते थे। नाभादास के काव्य में उनका भक्त-हृदय सर्वत्र दिखायी पड़ता है। उन्होंने अपने भावों को सरल भाषा के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि का ध्यान अलंकारों की अपेक्षा भावाभिव्यंजना पर अधिक केन्द्रित हुआ है। यद्यपि कला-पक्ष (अलंकार आदि) का स्थान नाभादास के काव्य में गौण है, तथापि काव्य की महत्ता और प्रभाव में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई। वास्तव में भावों की स्वाभाविकता ही काव्य में जीवन डालने का कार्य करती है। जो कवि हृदय में उठे हुए भावों का यथा-तथ्य प्रकाशन न करके, केवल अलंकार आदि में ही व्यस्त रहते हैं, उनका काव्य स्वाभाविकता से दूर जाकर, केवल कल्पना के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता है, उसमें प्रभावोत्पादकता का अभाव खटकने लगता है। रीति काल के कवि अलंकारों की चमक-दमक में अपनी प्रतिभा का सदुपयोग न कर सके, अन्यथा उस युग का साहित्य हिन्दी साहित्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता।

नाभादास के 'भक्तमाल' में उनके पवित्र भक्त-हृदय के दर्शन सर्वत्र होते हैं। प्रत्येक भक्त के चरित्र के वर्णन को पढ़ने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाभादास ने अपने हृदय की उदात्त-भावनाओं को इन भक्तों के चरणों में श्रद्धांजलि रूप में अर्पित किया है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियों से उसके हृदय की यथार्थ भावनाओं का स्वरूप आँका जा सकता है। भक्त कमलाकर भट्ट की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि कमलाकर जी मानो सम्प्रदाय के दूसरे मध्वाचार्य के रूप में ही उत्पन्न हुए हैं, भागवत के प्रचार करने वाले, सौंदर्य की खान, तत्ववेत्ता हैं :

"पंडित कला प्रबीन अधिक आदर दें आरज।
सम्प्रादय सिर छत्र द्वितिय मनो मध्वाचारज॥
जेतिक हरि अवतार सबै पूरन करि जानै।
परिपाटी ध्वजबिजै सदृस भागवत बखानै॥
श्रुति स्मृती संमत पुरान तत्प मुद्राधारी भुजा।
कमलाकर भट जगत में तत्वबाद रोपी धुजा॥[1]"

---

१. सम्पादक हनुमान प्रसाद : भक्तमाल (प्रकाशित भक्त चरितांक कल्याण में), पृ० ९

उपर्युक्त छप्पय के द्वारा कवि के हृदय की भावनाओं का जीता-जागता चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित हुआ है ।

बाल्यावस्था में ही नाभादास को उनके माता-पिता ने त्याग दिया था ।[1] इसीलिए उनके हृदय में संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई थी और वे भगवान के भजन में लीन हुए थे । अग्रदास के शिष्यत्व पद को ग्रहण करने के पश्चात् नाभादास ने भक्ति-मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया और उनके हृदय में भक्तों और भगवान के प्रति आदर-सम्मान के भाव जागृत हुए । वास्तव में इस नश्वर विश्व से विमुख होने पर मानव-हृदय की समस्त वृत्तियाँ इस लौकिकता को छोड़कर पारलौकिकता की ओर अग्रसर होती हैं । यह सत्य नाभादास के साथ भी लागू होता है । चक्षु विहीन[2] होने के कारण विश्व का समस्त आकर्षण, ऐश्वर्य, वैभव, सभी कुछ नाभादास के लिए व्यर्थ था । यही कारण है कि वे विश्व के आकर्षणों से दूर रह कर भगवान के भजन में लगे रहे । अपने गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने भक्तों का गुणगान प्रारम्भ किया और भक्तों की सहज अनुकम्पा भी नाभादास पर थी । नाभादास के भक्त हृदय में भक्ति-भावना के सिवाय और किसी प्रकार के भावों का आविर्भाव ही न होता था, इसके मूल में भगवान के प्रति अनन्य प्रेम के सिवा और कुछ न था ।

नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास के गुरु कील्हदेव ने किया था । बाल्यावस्था से ही नाभादास के हृदय रूपी थाले में कील्हदेव तथा अग्रदास ने भक्ति रूपी बीज बो दिये थे जो आगे चलकर पल्लवित और पुष्पित हुए । अग्रदेव के व्यक्तित्व का नाभादास के मस्तिष्क पर बड़ा स्वस्थ प्रभाव पड़ा और अपने गुरु की आज्ञा पाकर उन्होंने 'भक्तमाल' जैसे विशाल ग्रंथ की रचना की थी । नाभादास भगवान की भक्ति के महत्त्व से भलीभाँति परिचित थे, भगवान की अपार शक्ति, अनन्त स्वरूप पर उन्हें पूरा विश्वास था । भगवान की आराधना सर्वोपरि है । जिस प्रकार वृक्ष की जड़ों को सिंचित करने से उसके तने, शाखा, उपशाखा आदि सभी का पोषण हो जाता है तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, उसी प्रकार भगवान की आराधना करने से सभी की आराधना हो जाती है :

---

१. संपादक राधाकृष्णदास : भक्त नामावली, पृ० ८९

२. प्रताप सिंह कृत, भक्तनामावली, पृ० ३

"यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्ध भुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ।।"[1]

'भक्तमाल' के प्रारम्भ में कवि ने चौबीस अवतारों का वर्णन किया है । भगवान के चरण चिह्न भक्तों के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले है । भक्तों के लिए तो भगवान के चरणों की वंदना ही एक ऐसा साधन है जो उन्हें भव-बंधनों से छुटकारा दिलाता है । भगवान रामचन्द्र के चरण चिह्नों के विषय में कवि ने सीधी, सरल, भाषा के माध्यम से विशद वर्णन किया है । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि हृदय की भावनाएँ साकार हो उठी है :

"अंकुस अंबर कुलिस कमल जब धुजा धेनुपद ।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाह्रद ।।
अर्ध चंद्र षटकोन मीन बिन्दु ऊरधरेखा ।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुष विशेषा ।।"[2]

'भक्तमाल' में भक्तों के वर्णन प्रशंसात्मक अधिक हैं और उनमें स्वाभाविकता का अभाव कुछ खटकता भी है । किन्तु भक्तों के चरित्र सामान्य वर्ग के मानव से कहीं अधिक उच्च स्तर को पहुँचे हुए होते हैं । इसलिए 'भक्तमाल' के चरित्र वर्णन में स्वाभाविकता का कम होना आश्चर्य की बात नहीं ।

कवि की लेखनी से गहन तथा सरल, गूढ़ एवं स्पष्ट महत्त्वपूर्ण एवं साधारण, उत्तम तथा मध्यम सभी भाव व्यक्त हुए हैं । भावों की सरलता कवि की अपनी प्रमुख विशेषता है । वह केवल क्लिष्ट शब्द का अजायबघर बनाने के पक्ष में नहीं था । नाभादास तो सरल भाषा के माध्यम से अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाने के इच्छुक थे । कबीर, शंकराचार्य, तुलसी आदि चरित्रों के पीछे कवि की स्वयं आत्मा बोलती-सी दिखायी पड़ती है । कबीर की खंडन-मंडन प्रवृत्ति के विषय में कवि ने लिखा है कि

"कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ।"[3]

काव्य कला की दृष्टि से 'भक्तमाल' के वर्ण्य विषय को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) भगवान का वर्णन—अलौकिक

---

१. श्रीमद्भा० (४।३१।१४) देवर्षि नारद
२. नाभाकृत भक्तमाल ३. वही

(ख) भक्तों का वर्णन—चमत्कारिक, अलौकिक, साधारण ।

कवि ने भगवान के उसी आदर्श, महान् स्वरूप की प्रतिष्ठा की है, जो स्वरूप युगों से चला आ रहा है । चौबीस अवतारों की वंदना में कवि अपने हृदय की समस्त भक्ति-भावना को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है :

"जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन ।
परसुराम रघुबीर, कृष्ण कीरति जग पावन ।।
बुद्ध कलक्की व्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर ।
जग्य रिषभ ध्यग्रीव, धुरुव बरदैन धन्वंतर ।।[1]

कवि इन सभी अवतारों से करुणा की भीख माँगता है । इन अवतारों की जग को पवित्र करने वाली कीर्ति का कवि अनन्य भक्त, उपासक है ।

भक्तों के वर्णन में कवि ने चामत्कारिक विवरणों का यत्र-तत्र समावेश किया है । ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि इन भक्तों के अलौकिक चरित्र से विशेष प्रभावित था । कवि के जीवन के प्रारम्भ से ही सम्भवतः उसके हृदय में ऐसे संस्कार बन गए हों और इस प्रकार के संस्कारों के लिए कवि को अनुकूल वातावरण भी प्राप्त हुआ था। नाभादास ने धना जी के विषय में कहा है कि, "धना जी के खेत में बिना बोये ही फसल उत्पन्न हुई थी ।"[2] इस प्रकार के चामत्कारिक वर्णनों से कवि हृदय के भक्ति-भावना विषयक भाव अधिक स्पष्ट हो जाते हैं ।

अभिव्यंजना शक्ति

कवि में प्रतिभा का होना आवश्यक है । प्रतिभा-विहीन व्यक्ति के लिए काव्य-सर्जना अत्यन्त दुष्कर कार्य है । संस्कृत साहित्य में अनेक ऐसे कवि हुए है जिन्हें केवल 'अभ्यास' के बल पर ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई, किन्तु उनके काव्य में वह मनोहारिणी छटा का सर्वथा अभाव रहा है जो सहज ही किसी सहृदय को मुग्ध कर लेती है ।

अभिव्यंजना-शक्ति रचना-शैली का प्रमुख अंग है । भावों के व्यक्तीकरण को ही कवि की अभिव्यंजना-शक्ति कहा जा सकता है । जितनी उच्चकोटि की उसकी अभिव्यंजना शक्ति होगी उतने ही अच्छे ढंग से कवि अपने भावों को व्यक्त करेगा । इस उच्च अथवा निम्न अभिव्यंजना-शक्ति के लिए कवि की

---

१. भक्तमाल २. भक्तमाल

प्रतिभा उत्तरदायी होती है। 'अभ्यास' करने से कोई उत्तम कवि नही बन जाता, वह तो जन्म से ही एक वृहत्तर प्रतिभा के भंडार को लेकर उत्पन्न होता है, जिसके सहारे वह साधारण से साधारण दृश्य को भी काव्य के माध्यम से प्रस्तुत कर हमारे आनन्द-वृद्धि की सामग्री जुटाता है। साधारण से साधारण भावों को कवि इस ढंग से अपनी काव्यात्मक भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है कि हम किकर्त्तव्य विमूढ़-से ठगे-से उस कवि द्वारा प्रस्तुत चित्र को देखने और समझने मे तल्लीन हो जाते है। अत्यन्त सूक्ष्म भावो का विशद व्यक्तीकरण कवि की पहुँची हुई अभिव्यंजना शक्ति का द्योतक है।

कवि के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह रहता है कि वह किन मान-दंडो के आधार पर अपने भावों का व्यक्तीकरण करे जिससे उन विशेष भावों का प्रभाव सब पर समान पड़े। इसके लिए उसे अनुभूति की गहराइयो तक पहुँचना होता है, अपनी अनुभूतियों और भावो को वह सार्वभौम बनाकर काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। कवि की करुणा समस्त विश्व की करुणा का रूप धारण कर लेती है, उसका हर्ष-विषाद समस्त विश्व में व्यापकत्व प्राप्त करता है। कवि तुलसी की करुणा समस्त समाज और देश का प्रतिनिधित्व करती है, उनके दैन्य मे समाज की दीनता का रूप झलकता है।

नाभादास एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुए थे। नाभादास ने चरित्रों के वर्णन में नवीनता का समावेश न करके उनको ज्यो का त्यो अंकित किया है। यत्र-तत्र मौलिकता के भी दर्शन हो जाते है। कवि ने कही कहीं चामत्कारिक विवरण प्रस्तुत करते समय कल्पना का जो समावेश किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है।

नाभादास की अभिव्यंजना शक्ति का सबसे बड़ा परिचायक उनका 'भक्त-माल' है। भक्तमाल में कवि ने प्रायः २०० भक्तों के चरित्र का गान किया है। इनमें सतयुग, द्वापर त्रेता और कलियुग के अनेक भक्त है। इन भक्तों में कुछ सगुणोपासक है और कुछ निर्गुणोपासक। इनमें से कुछ विशेष प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। कुछ बहुत साधारण कोटि के कवि। भक्तमाल मे हर प्रकार के भक्तों का चरित्र उल्लिखित हुआ है। इन विविध प्रकार के चरित्रों में कवि की अभिव्यंजना शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। नाभादास को जितनी सफलता 'भक्तमाल के सुमेरु' गोस्वामी तुलसीदास के चरित्र-वर्णन में मिली है उतनी ही किसी भी नगण्य चरित्र की अभिव्यंजना में। यही है कवि की अभिव्यंजना-

शक्ति का परिचायक । नाभादास की अभिव्यंजना-शक्ति अन्य भक्त कवियों की तुलना में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है ।

नाभादास ने वर्णन या चरित्र की अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता पर विशेष ध्यान रखा है । इसीलिए उनके द्वारा वर्णित प्रसंग और चरित्र बड़े संक्षेप में है ।

कवि नाभादास की अभिव्यंजना-शक्ति के परिचायक दो छंदों को यहाँ पर उद्धृत किया जाता है :

गुनगन विसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ।।
वो हिथ, राम गुपाल, कुँवर वर, गोविन्द, मांडिल ।
छीत स्वामि, जसवन्त, गदाधर, अनंतानंद भल ।।
हरिनाम मिश्र, दीनदास, वछपाल, कन्हर जसगायन ।
गोसू, रामदास, नारद, श्याम, पुनि हरिनारायण ।।
कृष्ण जीवन, भगवानजन, श्यामदास विहारी, अमृतदा ।
गुनगन विसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा ।।

तथा **(श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे ।।**
लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ।।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संवलित भक्तपद रेनु उपासी ।।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मैं पगे ।
(श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे ।।

इन दोनों पदों में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रथम पद में नाभादास ने अनेक भक्तों के यश का गान एक ही पद में कर दिया है और दूसरे पद में केवल नन्ददास का चरित्र वर्णित हुआ है । अभिप्राय यह है कि लेखक का अपनी लेखनी पर पूरा अधिकार है । वह आवश्यकतानुसार विषय को विस्तार और संक्षिप्तता प्रदान कर सकता है ।

कल्पना का उत्कर्ष

कवि एक विशेष दृष्टिकोण से संसार की समस्त वस्तुओं को देखता है । हम सभी नदी, झरनों, उपवनों को देखते हैं, उन दृश्यों से आनन्द की प्राप्ति होती है, किन्तु एक सामान्य व्यक्ति के वर्णन और कवि के वर्णन में महान् अंतर हुआ करता है । कवि में भावुकता अधिक होती है, वह अपनी अन्तर्दृष्टि से

वस्तुओं की आत्मा तक पहुँच कर, उनका वर्णन कर एक नवीन वस्तु सम्मुख रखता है। कवि-हृदय में भावुकता का स्रोत अविरल रूप से प्रवाहित हुआ करता है, उसमें भावों की तरंगें उठा करती हैं और यही भाव जब बाहर आने के लिए तड़पने लगते हैं, कवि उनमें नवीनता आरोपित कर, उन्हें काव्य का स्वरूप प्रदान करता है। कवि वैज्ञानिक नही होता और न वह वैज्ञानिक सत्य का उपासक ही होता है। वह दृश्य का यथातथ्य वर्णन न करके, अपनी ओर से नवीनता और मौलिकता का समावेश करता है। यही काव्य में कल्पना के नाम से सम्बोधित की जाती है।

"कल्पना कवि की अलौकिक शक्ति है। यह शक्ति मानसिक है तथा थोड़ी-बहुत मात्रा में हर कवि मे रहती है। इस शक्ति के दो प्रधान कार्य है। पहला है विषय को पार्थिव जगत से ऊपर उठाना और दूसरा है किसी आत्मिक अथवा आध्यात्मिक सत्य का निरूपण करना। जब यह दोनों कार्य कल्पना समुचित रीति से सम्पादन कर देती है तो काव्य उच्च कोटि का काव्य बन जाता है।"[१]

कवि के लिए निर्जीव पदार्थ भी सजीव हुआ करते है। उसे जड़ मे भी चेतना का आभास होता है। उदाहरण के लिए एक पुष्प हमारे और आपके लिए कोई विशेष महत्त्व की वस्तु नही भी हो सकती है, किन्तु वही पुष्प कवि के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु हो सकती है। महादेवी जी का सुमन तो

"स्वप्न लोक की मधुर कहानी कहता सुनता अपने आप।"

कवि की दृष्टि क्षणमात्र में समस्त विश्व का भ्रमण कर लेती है।[२]

कल्पना काव्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है। कल्पना के द्वारा काव्य मे, कवि चार चाँद लगा देता है। कल्पना कवि-मस्तिष्क की उपज हुआ करती है। एक ही वस्तु के विषय मे यदि दो-चार कवि काव्य रचना करने बैठें तो प्रत्येक की कविता मे पर्याप्त विभिन्नता दिखायी पड़ेगी। कल्पना के माध्यम से कवि वस्तु विशेष के विषय में कुछ न कुछ मौलिकता और नवीनता प्रस्तुत करता ही है, किन्तु यह मौलिकता और नवीनता स्वाभाविकता से दूर होने पर काव्य-सौदर्य को हानि पहुँचती है। काव्य की महिमा इसी मे है कि हमसे परिचित

---

१. डा० एस० पी० खत्री : काव्य की परख, पृ० ५०-५१

२. "Poets eye is a fine frenzee, rolling from heaven to earth and from earth to heaven."

Shakespeare : Midsummer Nights Dream.

वाह्य-जगत् की व्याख्या कवि इस तरह करे कि हमे नित नूतन तथा आश्चर्य-जनक अनुभव मिलें और हमे उसके मनन में स्थायी आनन्द प्राप्त हो।

कवि और सामान्य मानव मे एक अन्तर है यह कि कवि इस विश्व में रहता हुआ भी कल्पना-लोक मे विचरण किया करता है, जबकि सामान्य मानव के सम्मुख इस प्रकार का कोई प्रश्न रहता ही नही। सामान्य मानव का जीवन यथार्थ अधिक होता है, कवि यथार्थ से दूर भागकर कल्पना-लोक की शरण में जाता है, किन्तु यथार्थ की नितांत अवहेलना कवि नहीं करता। कवि हरी घास, सफेद मेमने तथा निर्झर को देखता है जो इसी जड़ जगत के विषय हैं। कल्पना की प्रथम रश्मि ने उसे सुन्दर, सुकुमार तथा मधुर बनाया, दूसरी रश्मि ने उसे इस पार्थिव जगत से उठाकर आध्यात्मिक जगत में लाकर स्वच्छ रूप में प्रतिष्ठित किया। विषय की भौतिकता इस स्थल तक आते-आते आध्यात्मिकता में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार स्पष्ट है कि कल्पना काव्य के आध्यात्मिक परिवर्तन मे सहायक होती है।

काव्य और कल्पना मे घनिष्ट सम्बंध है। "काव्य और कल्पना में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सूर्य और पृथ्वी में है। जिस प्रकार पृथ्वी अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती रहती है, उसी तरह काव्य रूपी पृथ्वी मानव अनुभूतियों की धुरी पर कल्पना-सूर्य के चारों ओर घूमती है। जिस समय कल्पना की प्रखर किरणे काव्य पर पड़ती है उस समय काव्य का विषय इस पार्थिव लोक से उठकर एक दूसरे सौदर्य-लोक मे जा पहुँचता है। विषय की भौतिकता, कल्पना सूर्य की उष्णता मे पिघल कर, स्वच्छ हो एक दूसरे जगत की आभा बन जाती है।"[१] स्पष्ट है कि कल्पना काव्य को ऐसा स्वरूप प्रदान कर सकती है जिसका अवलोकन कर हम एक ऐसे ससार में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द के सिवाय और कुछ है ही नहीं।

काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। जिस काव्य में मानव जीवन की अनुभूतियाँ सुख, दुःख की भावनाएँ नहीं व्यक्त होतीं, वह साहित्य केवल मनोरंजन की सामग्री मात्र ही कहा जा सकता है। आज के कवि, साहित्यकार को जन-जीवन मे प्रवेश करना अत्यन्त आवश्यक है। आज के साहित्यकार को यथार्थ की भूमि पर पनपना चाहिए। कल्पना लोक के कोमल कुसुमों के साथ खेलने की अपेक्षा उसे संसार और अपने चारों ओर फैले हुए समाज के प्रति चेतनशील रहना

---

१. डा० एस० पी० खत्री : काव्य की परख, पृ० ४७-४८

होगा । यथार्थवादी होते हुए भी कवि अपने भावो को व्यक्त करने के लिए कल्पना का माध्यम ग्रहण कर सकता है, किन्तु कल्पना तत्व यथार्थ की तुलना मे असंतुलित न होना चाहिए । लगभग सभी भक्त-कवियो के काव्य के प्रेरक सूत्र जन-जीवन और तत्कालीन समाज ही रहे है, किन्तु यह नही कि उनका काव्य कल्पना-विहीन हो । इन भक्त कवियो के साहित्य में अनेक स्थलों पर सुन्दर कल्पनाओं का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है ।

नाभादास के 'भक्तमाल' मे स्थल-स्थल पर, कवि ने कल्पना का सहारा लेकर भक्तों के चरित्रों के विवरण को प्रस्तुत किया है । इन भक्तो के चरित्रांकन में कवि नाभादास की दृष्टि कल्पना तत्व की अपेक्षा आदर्श और यथार्थ तत्व की ओर अधिक रही है । हाँ, देवताओं और कुछ अन्य अवतारों के विषय में कवि ने अवश्य कल्पना का आश्रय लिया है । तथ्य तो यह है कि नाभादास बहुश्रुत थे और अपने इसी ज्ञान के भंडार को साधारण भाषा के माध्यम से ज्यों का त्यों 'भक्तमाल' के रूप मे साहित्य के क्षेत्र में प्रस्तुत किया ।

कवि में भावुकता स्वभावतः होती है । भावुकता और कल्पनोत्कर्ष मे निकट का सम्बंध है । कवि होने के नाते नाभादास में भावुकता और कल्पना तत्व होना स्वाभाविक है ।

'भक्तमाल' के पूर्वार्ध के लगभग समस्त चरित्र काल्पनिक है । उनका कोई ऐतिहासिक आधार नही प्राप्त होता । उत्तरार्ध के लगभग सभी भक्त अस्तित्व रखने वाले थे । इन चरित्रों के वर्णन में कवि कल्पना का सहारा लेकर आगे बढ़ता है । कवि का सबसे बड़ा कौशल तो इस बात से सिद्ध होता है कि यथार्थ के साथ-साथ उसने कल्पना का पुट भी दिया है । कवि सम्भाव्य और स्वाभाविक बातों की ही कल्पना करता है, रीति कालीन कवियों की अस्वाभाविक कल्पनाओं से वह दूर है । कवि भक्तों के आदर्श चरित्र की स्थापना करने का सतत प्रयास करता दिखायी देता है ।

अग्रदास के चरित्रांकन मे कवि की कल्पना देखने योग्य है । 'अग्रदास ने हरिभजन के सिवा कभी व्यर्थ में समय नष्ट नहीं किया,' इस बात को सीधे-सादे ढंग से कवि न कहकर निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रकट करता है :

"रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर ।"[१]

---

१. प्रियादास कृत भक्तमाल टीका

कवि अग्रदास के 'रसना' के विषय मे कल्पना करता है कि मानो वह मेघ के समान है जिससे भगवान के निर्मल नाम की वर्षा हुआ करती है।

भक्तों के साथ सदैव भगवान रहते है। इस बात को कवि अलंकरणशैली के माध्यम से प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि "भक्तनि संग भगवान नित(ज्यों) गऊ बच्छ गोहन फिरैं।"[१] कितना स्वाभाविक, प्रभावशाली कवि द्वारा प्रस्तुत यह काल्पनिक चित्र बन पड़ा है।

कल्पना के दो विभाग भी किये जा सकते है--(१) मौलिक, (२) पूर्व प्रसंगों के आधार पर की गई कल्पना।

कल्पना के इन दो उपर्युक्त विभागों मे से नाभादास के काव्य में प्रथम विभाग (मौलिक कल्पना) का आधिक्य है। नाभादास का उद्देश्य रीतिकालीन कवियों की भांति 'कोरी कल्पना' की उड़ान मे उड़ना न था। भक्तों के चरित्रों का विवरण देते हुए अनायास ही उनके काव्य में कल्पना का समावेश हो गया है। कवि द्वारा प्रस्तुत किये हुए ऐसे स्थल सर्वथा मौलिक है तथा जन-सामान्य के लिए भी अपने में आकर्षण रखते है। दुरूह कल्पना का भी नाभादास के काव्य में अभाव है। मीरांबाई के विषय में कवि कल्पना करता है कि कलियुग में मीरां उस गोपी के समान ही उत्पन्न हुई है जो समाज आदि का भय त्याग कर कृष्ण के रंग में उन्मत्त है :

"सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥

*　　*　　*

भक्ति निसान बजाय के काहूँ ते नाहिन लजी।

रस

रस काव्य की आत्मा माना गया है। 'साहित्य-दर्पण' के यशस्वी लेखक ने काव्य की परिभाषा का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रसयुक्त कलात्मक अनुभूति से पूर्ण भाषा को कविता कहते है।[२] 'रस-गंगाधर' में काव्य की परिभाषा को निर्धारित करते हुए कहा गया है "रमणीयार्थक प्रतिपादकशब्दः काव्यम्।"[३] काव्य का आनंद रस पर ही निर्भर रहता है। यह रस भाव, विभावादि द्वारा उद्बोधित सतोगुण प्रधान सहृदय के स्थायी

---

१. वही　　२. साहित्य दर्पण　　३. वही

भाव का आस्वादन जन्य आनन्द है। यह आनन्द विस्तृत होकर चित्त में व्याप्त हो जाता है। इसीलिए यह काव्यानन्द रस मूल होने के कारण "रसो वै सः" के अनुसार ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है।[१] डा० श्यामसुन्दर दास के शब्दों मे 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादन के लिए सस्कृत मे अलंकारों की विशेष रूप से योजना की गई है और रस तो काव्य की आत्मा माना गया है।[२] "यद्यपि बिना शरीर के आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करना दर्शन शास्त्रियों की बुद्धि परीक्षा का विषय बन जाता है, तथापि आत्मा के बिना शृंगार की आलम्बन स्वरूपा ललित लावण्यमयी आंगनाओं के कोमल कांत कमनीय कलेवर भी हेय, त्याज्य और वीभत्स के स्थायी भाव घृणा के विषय बन जाते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ के आचार्यों ने काव्य की आत्मा को विशेष रूप से अपनी मनीषा और समीक्षा का विषय बनाया है। इस आत्मा सम्बंधी प्रश्न के उत्तर पर काव्य का स्वरूप और उसकी परिभाषा निर्भर है और काव्य की आलोचना भी इससे बहुत अंशों मे प्रभावित होती है।"[३]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रस काव्य का अनिवार्य तत्व है। रस के अभाव में काव्य उसी प्रकार निर्जीव होगा यथा प्राण के बिना शरीर। छन्द, अलंकार, विशेषानुभूति आदि के बिना काव्य की रचना हो सकती है, पर रस की महत्ता काव्य के लिए अद्वितीय है।

काव्य के लिए रस की अनिवार्यता पर पर्याप्त विचार किया जा चुका है। अब 'भक्तमाल' मे किन-किन रसो का परिपाक हुआ है, इस विषय पर विचार किया जायेगा।

नाभादास पहले भक्त थे और बाद को कवि। उन्होंने भक्तों के परम पुनीत चरित्र के गायन के लिए ही काव्य का सृजन किया। काव्य को साधन रूप में उन्होंने ग्रहण किया था न कि साध्य रूप में। काव्य के माध्यम से ही भक्त नाभादास के हृदय के सच्चे उद्‌गार हमारे सम्मुख आते हैं। नाभादास विद्यापति और बिहारी की भाँति न तो शृंगारी कवि थे और न कबीर की भाँति केवल सुधारक ही थे। भक्तों के चरित्र गायन के लिए उन्होंने कविता की। अतः उनके काव्य में अन्य रसों को खोजना भूल होगी। नाभादास का 'भक्तमाल' शांत-रस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, किन्तु इसमें सभी रसों के उदाहरण स्थल-

---

१. डा० त्रि० ना० दीक्षित : साहित्य समीक्षा, पृ० १६

२. साहित्यालोचन, पृ० ६५

३. सिद्धांत और अध्ययन, पृ० १

स्थल पर मिलते है। जहाँ पर कवि ने भक्तों के अलौकिक चरित्रों का विवरण दिया है, वहाँ पर अद्‌भुत रस का परिपाक हुआ है। 'भक्तमाल' में चारित्रिक गुणों के आधार पर रसपरिपाक हुआ है। अधिकांश चरित्र भक्तों के ही हैं जिनके चरित्र वैराग्य तथा त्याग के ज्वलंत उदाहरण है और इन विशेषताओं को अपने में समाहित कर शांत रस ही काव्य के क्षेत्र में पदार्पण करता है।

'भक्तिपंचरस' का वर्णन करते हुए रूपकला जी ने कहा है कि :

"शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार चारु,
पाँचो रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानोगे विचारि मन,
इनके स्वरूप में अनूप लै दिखाये है।
जिनके न 'अश्रुपात' पुलकित गात कभूँ,
तिनहूँ को 'भाव' सिंधु बोरि सो छकाये हैं।
जौलौं रहैं दूर रहैं विमुखता पूर,
हियो होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में रूपकला जी ने इस बात का संकेत किया है कि उन्होंने 'भक्तमाल' की टीका मे अनेक रसो का विधान किया है, जो भक्तों के हृदय' को रसमग्न कर देते है। 'भक्तमाल' और उसकी टीका 'भक्तिरस बोधिनी' (प्रियादास कृत) में भी भक्त जनों के लिए शृंगार, सख्य, वात्सल्य, दास्य, शांत, रसों की योजना की गयी है, जो भक्तहृदयो को तृप्त करने का सुलभ साधन है।

'भक्तमाल' मे आद्योपांत भक्तचरित्र वर्णित है। पूर्वार्ध मे देवताओं तथा त्रेता और द्वापर के चरित्रों के दर्शन छाया की भाँति हो जाते है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह चरित्र अपूर्ण है। उत्तरार्ध में कवि ने लगभग २०१ भक्तों के जीवन के संक्षिप्त विवरणो को हमारे सम्मुख रखा है। यह सभी भक्तचरित्र हैं, विश्व में रहते हुए भी निर्लिप्त है; त्याग और वैराग्य इन भक्तों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम शांतरस के परिपाक पर विचार किया जायगा।

---

१. तिलक, रूपकला, भक्तिसुधारवाद, पृ० १४-१५

शांतरस

भक्तों और संतों के काव्य में शांतरस की धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। यथार्थ में इन भक्तों एवं संतों की काव्यरचना का मुख्य आधार, शांत रस ही है। शांतरस को यदि संत-काव्य और भक्ति-काव्य की आत्मा माना जाय, तो त्रुटि न होगी।

शांतरस वैराग्य से उत्पन्न होता है, इसका स्थायी भाव निर्वेद है, ब्रह्म और यह नश्वर संसार आलम्बन, तपोवन, गंगा आदि पवित्र स्थान, साधु उद्दीपन विभाव, रोमांचादि अनुभव और हर्ष स्मृति आदि इसके संचारी भाव हैं।[१] जिन प्रमुख तत्वों का समावेश शांतरस में होता है, वे सभी तत्व साधु, महात्माओं और संतों में उपलब्ध होते हैं। नाभादास, भक्त थे, उन्होंने भक्तिप्रधान भावों की रचना प्रचुर मात्रा में की है। वास्तव में नाभादास का प्रथम उद्देश्य यही था कि भक्तों के चरित्रों का गायन कर भक्ति धारा का स्रोत प्रवाहित किया जाय। अपने गुरु की आज्ञा पाकर ही उन्होंने भक्तों के चरित्रों का गुणगान किया था :

"अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन कौ यश गाउ।
भव सागर के तरन कौ, नाहिन और उपाउ॥"[२]

कवि ने जिन भक्तों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है, वे सभी त्यागी, महात्मा थे। विट्ठलनाथ जी पुत्र कृष्णदास जी का चरित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि उन्हें भगवान के भजन में लीन, सज्जन, महात्मा आदि बतलाया है।

"श्री बल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुनआगर।
कबित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर॥
बानी बंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रजरज अति आराध्य, वहै धारी, सर्वसु चित्त॥
सानिध्य सदा हरिदास बर्य, गौर श्याम दृढ़ ब्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौ नाम माँझ साझो दियौ॥"[३]

कवि द्वारा प्रस्तुत चरित्रों के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि सर्वत्र

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यादर्श, पृ० २०
२. तिलक रूपकला, भक्ति सुधार-वाद (भक्तमाल की टीका) पृ० २५
३. वही, पृ० ५८१

आत्मनिवेदक के रूप में हमारे सम्मुख आता है और यथार्थ में कवि हमारे सम्मुख एक सच्चे आत्मनिवेदक के रूप में ही आता है।

अद्भुत-रस

अद्भुत-रस की उत्पत्ति उन स्थलों से होती है जो हमें आश्चर्य चकित कर देते हैं। विस्मय, इस रस का स्थायी भाव है, आश्चर्यजनक वस्तु आलम्बन है, उसकी आश्चर्यकारी दशाएँ उद्दीपन विभाव है, स्तम्भ अनुभव है, वितर्क संचारी भाव है।

'भक्तमाल' में इस रस के उदाहरण वे चरित्र हैं जिनमें कवि ने अलौकिक और चामत्कारिक घटनाओं का समावेश किया है। पूर्वार्ध में (भक्तमाल के) हनुमान जी का चरित्र इसी कोटि में रखा जा सकता है। धना जी के चरित्र में भी कवि ने एक ऐसी घटना का विवरण दिया है, जो अनायास ही हमें आश्चर्य-चकित कर देती है। एक बार धना जी के घर अनेक साधु आये। खेत में बोने के निमित्त रखा हुआ सभी अन्न धना ने उन भक्तों को खिला दिया और अंत में क्षेत्र में यों ही हल चलवा दिया। भगवान की कृपा से उनके खेत में बिना बोये हुए ही फसल उत्पन्न हो गई :

"घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात, मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई॥
अचरज मानत जगत में कहुँ निपुज्यो, कहुँवै बयौ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ॥"[1]

तीसरी पंक्ति में हास्य का भी अच्छा प्रस्फुटन दृष्टिगत होता है। अन्य कृषक धना की मूर्खता पर हँसते थे कारण कि उन्होंने बिना बीज खेत में डलवाये ही लांगूल चलवा दिया था। अंतिम पंक्ति में अद्भुत रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार कवि निष्किचन भक्त के चरित्र में भी अद्भुतरस का समावेश करता है। इस भक्त की भक्ति से प्रभावित होकर भगवान स्वयं इसके घर पधारे थे :

---

१. भक्तमाल (भक्त चरितांक कल्याण), पृ० ५

"साषि देन कौ स्याम 'खुरदहा' प्रभुहि पधारे।"[1]

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण 'भक्तमाल' मे उपलब्ध होते हैं।

दास्य भावना सम्पूर्ण 'भक्तमाल' मे दृष्टिगत होती है। नाभादास सभी भक्त चरित्रों में अपने को सबसे निम्नकोटि का समझते हैं। प्रत्येक चरित्र की कवि स्तुति, वंदना करता हुआ दिखाई पड़ता है। माधुर्य भाव के भी उदाहरण मीरां तथा अन्य कुछ भक्ताओं के चरित्र में मिल जाते हैं। वीभत्स का उदाहरण कवि ने एक चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। एक भक्त की भक्ति का विवरण देता हुआ कवि कहता है कि उस भक्त ने दान में अपने पुत्र का शीश दे दिया था और अपनी सच्ची को बनाये रखने के लिए पुत्र का बध भी कर दिया। कुछ चरित्रों में एक साथ ही दो-दो रस आ उपस्थित हुए हैं, जैसा धना के चरित्र में हास्य और अद्भुत। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से यह कवि की पहुँच का परिचायक है, कारण कि ये दोनों ही रस विरोध नहीं रखते।

चरित्र-चित्रण की शक्ति

सम्पूर्ण 'भक्तमाल' में देवताओं और भक्तों के चरित्रों को ही कवि ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ के पूर्वार्ध मे देवताओं के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है। पूर्वार्ध के यह चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और अनेक गुणों से सम्पन्न हैं। स्वभावतः हमारे मन में भगवान के प्रति श्रद्धा और सम्मान रहता ही है। कवि ने भी इन देवताओं के चरित्रों मे अनेक गुण समाविष्ट किये हैं जो हमें आकृष्ट करते हैं। हनुमान जी का जैसा रूप आज हिन्दू जनता के मध्य प्रतिष्ठित है, उसी के अनुरूप नाभादास भी हनुमान जी के चरित्र को अंकित करते हैं। हनुमान हिन्दुओं के पूज्य देवता माने जाते है, जामवंत, जटायु आदि भी हमारे लिए पूज्य है। कवि कहता है :

"हरिबल्लभ सब प्रार्थी, निज चरण रेणु आसाधरी।
हनुमंत, जामवंत, सुग्रीव, विभीषण शबरी खगपति।"

नाभादास प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। भक्त-चरित्रों के गायन के लिए ही उन्होंने अपनी लेखनी का सहारा ले भाषा के माध्यम से भक्तचरित्रों का चित्र अंकित किया है। नाभादास द्वारा वर्णित चरित्रों की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

---

१. वही, पृ० ३

१. स्वाभाविकता २. प्रशंसात्मकता ३. अलौकिकता

१. स्वाभाविकता

कवि चरित्रों के अन्तरतम तक पहुँचकर, उनका अत्यन्त स्वाभाविक विवरण देता है । भक्त और भगवान हमारे लिए आदर और सम्मान के पात्र हुआ करते हैं। उनमें गुणों के सिवाय दोष होते ही नहीं, वे त्यागी, जितेन्द्रिय होते है । नाभादास ने सभी भक्तों के चरित्रों को इसी रूप में प्रस्तुत किया है ।

२. प्रशंसात्मकता

यह भक्तमाल में वर्णित भक्तों के चरित्रों की दूसरी विशेषता है । सभी भक्तों के चरित्र प्रशंसा से पूर्ण हैं ।

३. अलौकिकता

चरित्रों में चामत्कारिक घटनाओं का समावेश कर कवि ने उन्हें अलौकिकता प्रदान की है । कवि ने भक्तों के चरित्रों का भलीभाँति चित्रण न करके उन चरित्रों से उद्भूत गुणों पर विशेष ध्यान रखा है । कवि का उद्देश्य चरित्रों के गुण-दो ा का विवेचन करना न था, वह तो इन भक्त-चरित्रों को जनता के सम्मुख रख कर, उनके पवित्र जीवन से भारतीय धर्म-प्राण जनता में भक्ति की जागृति चाहता था । कवि भक्तो के जीवन की सभी घटनाओं को न प्रस्तुत कर केवल उनका लोक कल्याणकारी रूप ही प्रस्तुत करता है ।

'भक्तमाल' में वर्णित चरित्र इतने अपूर्ण है, कि किसी भी भक्त विशेष के विषय में हमें पर्याप्त सामग्री नही उपलब्ध हो पाती । चरित्र-चित्रण में कवि की सफलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि ये चरित्र अधूरे होते हुए भी हमारे हृदय की श्रद्धा के पात्र बन सकें ।

'भक्तमाल'में कवि ने चरित्र-चित्रण पर सम्यक् रूप से ध्यान नहीं दिया है । परन्तु फिर भी भक्तों के चरित्र का जो कुछ वर्णन हुआ है वह सुन्दर है । यहाँ पर चरित्र-चित्रण विषयक कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है :

(क) लोक लाज कुल भृंखला तजि मीरां गिरिधर भजी ।।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट, कलिजुगहि दिखायौ ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ ।
दुष्टनि दोष बिचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ ।
बारन बाँका भयौ, गरल अमृत ज्यौं पीयौ ।

भक्ति निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी ॥[१]

(ख) श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, 'भट्ट लक्ष्मन' अनुसर्यौ ॥
सदाचार मुनिवृत्ति भजन भागौत उजागर ।
भक्तनि सो अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर ॥
संतोषी तुठि सील हृदै स्वारथ नहि लेसी ॥
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी ॥
श्री भागौत बखान कै नीर क्षीर बिबरन कह्यौ ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप 'भट्ट लक्ष्मन' अनुसर्यौ ॥[२]

इन दो पदों में कवि के चरित्र-चित्रण का आभास प्राप्त हो जाता है । पहले पद से मीरां और दूसरे से भट्ट लक्ष्मण के चरित्र का पूर्णाभास हमें मिल जाता है । यह कवि की सफलता का द्योतक है । निम्नलिखित छंद में देखिए तत्वा जी और जीवा जी का चरित्र कितनी सुन्दरता के साथ अंकित हुआ है :

तत्वा जीवा दक्षिण देस बंसोद्धर राजत विदित ।
भक्ति सुधा जल समुद्र भये बेलावलि गाढ़ी ।
पूरब जा ज्यों रीति प्रीति उत्तरोत्तर बाढ़ी ।
रघुकुल सदृश सुभाव, सिष्ट गुण, सदा धर्म रत ।
सूर, धीर, उदार, दया पर, दक्ष अनन्य व्रत ॥
पदम खंड 'पदमा पद्धति' प्रफुल्लित कर सविता उदित ।
'तत्वा' 'जीवा' दक्षिण देस बंसोद्धर राजत विदित ॥[३]

छंद

काव्य-शास्त्रियों के मतानुसार छंद काव्य का अनिवार्य अंग है । इसे काव्य से भिन्न नहीं किया जा सकता । छंद की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए विद्वानों ने कहा है कि, "छंद का प्रचार बहुत प्राचीन काल से दिखायी देता है । यह उतना ही प्राचीन है जितने प्राचीन वेद हैं । वेद के छह अंगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छंद) में से एक यह भी है ।"[४]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत से "काव्य के भेद बतलाते हुए शैली के अनुसार उसके दो भेद किये गए है, गद्य और पद्य । . . . पद्य नाम इसलिए

---

१. भक्तमाल, पृ० ७१९ २. वही, पृ० ९०२
३. भक्तमाल, पृ० ५४२ ४. वाङ्मय विमर्श, पृ० १६७

पड़ा कि इस रचना का सम्बंध पद (चरण) से है। पदों (चरणों) के अनुसार बहुत-से साँचे बनाये गए, इसीलिए वे बने बनाये साँचे पद्य कहलाते हैं। छंद नाम भी इसी ढंग से रखा गया है। यद्यपि गद्य में भी कुछ न कुछ बंधन होता है, पर उसकी लंबाई बँधे हुए साँचों मे नही हुआ करती। किन्तु पद्य की रचना लंबाई की विशेष नाप के अनुसार चलती है। इसी बंधन का नाम 'छंद' है।"[१] डा० रसाल का कथन है कि, "छंद पद्य का वह व्यवस्थित रूप है जिसमें भाव-प्रकाशन शब्द मात्राओं और वर्णों की निश्चित संख्या के साथ ऐसे संगठित किये जाते है कि भाव व्यक्त होता हुआ भी अव्यक्त-सा रहता है और कुछ यत्न से स्पष्ट होता है। संगीतात्मक लय इसकी रुचिरता और रोचकता को बढ़ा देते है। गद्यगत शब्द व्यवस्था के सदृश छंद में शब्द-व्यवस्था नहीं रहती है क्योंकि इसमें गेयता आवश्यक होती है।"[२] वयोवृद्ध लेखक बाबू गुलाब राय के मत से भावमयी भाषा में जो स्वाभाविक गति आ जाती है, छद उसी का बाहरी आकार है। छंद मे वर्ण नृत्य की भाँति ताल और लय के आश्रित रहते है। छंद भाषा को भावानुकूल बनाकर पाठक में एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते है।[३]

उपर्युक्त विद्वानों के इन मतों का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि छंद, काव्य-सौदर्य, ग्राहकता और काव्य-कला की अभिवृद्धि के लिए बहुत ही आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान् सर सिडनी फिलिप का कहना है कि, "संसार के सबसे अधिक कवियों ने अपनी कविता को छंदों से आभूषित किया है। परन्तु केवल छंद से ही काव्य की उत्पत्ति नहीं होती। महान् कवियों ने तो छंद-हीन काव्य भी रचे है।"[४] इसके विरोध में आर० हार्ड ने कहा है कि "काव्य में सम्पूर्ण आनन्द के लिए छंद अत्यन्त आवश्यक है, बिना इसके काव्य के सुनने का आनन्द समाप्त हो जाता है।[५] डा० श्यामसुन्दर दास जी का इस सम्बंध में निर्णय पठनीय होगा। उनके शब्दों में, "सिद्धान्त रूप म छंदों की अनिवार्यता का खंडन करते हुए भी हम यह स्वीकार करते हैं कि

---

१. वही, पृ० १६७
२. रसछंदालंकार, पृ० ७५
३. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १९०
४. Sidney Philip : An Apology for Poetry, p. 50
५. R. Hard : Idea of Universal Poetry, p. 60

संसार का काव्य साहित्य एक बड़ी मात्रा में छंदोबद्ध है और वे छंद संगीत शास्त्र के अनुसार निर्मित है। पश्चिम मे अब तक कविता और छंद का अन्योन्य सम्बध माना जाता है।...पद्य मात्र को कविता नाम देने में कितनी भ्रांति है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।"[१]

भक्त कवियों का काव्य भी छंदों में लिखा गया है। परन्तु यह सत्य है कि इन भक्तों की दृष्टि में छंद का उतना अधिक महत्व नही था। छंद उनके लिए जनता तक पहुँचने का एक साधन मात्र था। भक्तों ने अपने काव्य को गेय, कर्ण-प्रिय बनाने के लिए छंदों का सहारा लिया। इसके अतिरिक्त भावों और संदेशों को छंदों में बाँधने का एक और भी कारण था। भावों के प्रसार और प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें संगीतात्मकता का आधार माधुर्य, पाठ सौंदर्य और कलात्मकता होने के कारण काव्य प्राय. पद्यात्मक ही रखा गया। इसी संगीतात्मकता को सुरक्षित रखने के लिए काव्य-शास्त्रियों ने चरणान्त की अक्षर मैत्री (या तुक) का विधान, काव्य के लिए उपयोगी माना है।[२] नाभादास ने भी अपने काव्य को ज्ञेय और संगीतात्मक बनाने के लिए, छंदों की सहायता ली, इसमें लेशमात्र भी संदेह नही है। नाभादास का छंदादर्श भक्तों के आदर्श से साम्य रखता है। 'भक्तमाल' की रचना के लिए नाभादास ने तीन ही छंदों का प्रयोग किया है :

१. छप्पय　　२. कुंडलियाँ　　३. दोहा

नाभादास ने 'भक्तमाल' की रचना के लिए १९६ छप्पय छंदों, १७ दोहों और दो कुंडलियों का प्रयोग किया है। अब इनमें से प्रत्येक के कतिपय उद्धरण दिये जा रहे हैं :

छप्पय

पहले ४ चरण रोला के, अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं :

(१) **'ब्रजभूमि उपासक' भट्ट सों, रचि पचि हरि एकै कियौ॥**
गोप्यस्थल मथुरा मंडल जिते 'बाराह' बखाने।
ते किये 'नारायण' प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥
भक्ति सुधा कौ सिंधु, सदा सतसंग समाजन।
परम रसज्ञ, अनन्य, कृष्णलीला कौ भाजन॥

---

१. साहित्यालोचन, पृ० १०१
२. वाङ्मय विमर्श, पृ० १७७

ज्ञान समारत पच्छ कों नाहिन कोउ खंडन बियौ।
'ब्रजभूमि उपासक' भट्ट सों, रचि पचि हरि एकै कियौ ॥"[१]

'छप्पय' छंद में प्रथम चार चरण रोला के होते हैं अर्थात् ११ और १३ मात्राओं पर विराम होता है, चरणान्त में लघु और गुरु का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता, अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं अर्थात् १३ और १३ मात्राओं पर विराम होता है और अन्त में गुरु वर्ण होता है। इस कसौटी पर उपर्युक्त छप्पय पूर्ण है।

दोहा

विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राओं के साथ, विषम चरणों के आदि में जगण (।ऽ।) और सम चरणों के अंत में तगण (ऽऽ।) या जगण रखते हुए, चौबीस मात्राओं का छंद है।

'भक्तमाल' के कुछ दोहों के उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

(१) **"भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु, चतुर नाम बपु एक।**
इनके पद बंदन किये, नाशै विघ्न अनेक ॥"[२]

(२) **"मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप।**
हरिजन कौ यश गावते, हरिजन मंगल रूप ॥"[३]

कुंडलिया

इस छंद में पहले एक दोहा और फिर रोला के चार चरण होते हैं। कुंडलिया छंद का कतिपय उद्धरण निम्नलिखित प्रस्तुत है :

गलतें गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी, कृष्णदास कलि जीति ॥
कृष्णदास कलिजीति, न्योति नाहर पल दीयौ।
अतिथि धर्म प्रतिपालि, प्रगट जश जग में लीयौ ॥
उदासीनता अवधि, कनक कामिनि नहिं रातो।
रामचरण मकरंद रहत निसिदिन मद मातो ॥
गलतें गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी, कृष्णदास कलिजीति ॥"[४]

---

१. भक्तमाल, पृ० ५९५ २. भक्तमाल, पृ० ४१ ३. भक्तमाल, पृ० ४२
४. भक्तमाल, पृ० ९०२-९०३

अलंकार

काव्य के क्षेत्र में अलंकार के विषय में अनेक प्रकार की धाराएँ दृष्टिगत होती हैं। अलंकार की अनेकानेक परिभाषाएँ उल्लिखित हुई हैं। "अलंकारोति इति अलंकारः" अर्थात् जो विभूषित करे वही अलंकार है। भामह तथा दंडी ने काव्य के लिए अलंकार को विशेष महत्त्व दिया है। "भामह की काव्य में अलंकार सम्बंधी वही धारणा है जो भरत की नाटक में रस सम्बंधी। . . .दंडी की धारणा अलंकार के सम्बंध में और भी व्यापक है। उनकी दृष्टि में काव्य की शोभा बढ़ाने वाले सभी धर्म अलंकार है (काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते). . .।"[१] "अलंकार शब्द का अर्थ है पर्याप्त रूप से सुसज्जित और सुशोभित करने वाला। काव्य को सुशोभित करने वाले उन विधानों को अलंकार कहते हैं जिनके द्वारा काव्य में आकर्षण आता है। काव्य-शोभा और श्री के बढ़ाने में अलंकार ही समर्थ है। काव्य की शोभा को बढ़ाते हुए रसभावादि के उत्कर्षक चातुर्य चमत्कारपूर्ण वे विधान अलंकार हैं जो शब्द और अर्थ में समाकर्षक सौंदर्य लाते है।"[२] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "अलंकार एक विशेष प्रकार की लिखने या बोलने की शैली है और उसके द्वारा विशेष प्रकार के अर्थ लक्षित कराये जाते हैं। . . .कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि काव्य को अलंकार रहित मानना वैसा है जैसे अग्नि को उष्णता रहित मानना। . . . काव्य अनलंकार कभी नहीं हो सकता।"[३] आचार्य मिश्र जी के प्रस्तुत कथन के अंतिम शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण है। यह सत्य है कि काव्य को अलंकार रहित या अलंकार से अछूता रखना बड़ा दुस्तर कार्य है। यदि काव्य को रमणीयता प्रदान करना है तो अलंकारों का सहारा किसी न किसी रूप में, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लेना ही पड़ता है। हिन्दी के भक्त कवियों ने अपने काव्य की रचना प्रतिभा-प्रकाशन के लिए नहीं की थी, किन्तु उनका काव्य अलंकारों से विहीन नही है। संत कवि दरिया साहब ने अपना काव्यादर्श स्पष्ट करते हुए लिखा है :

"सकल कबित का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का कर लीजै दिन रात।"[४]

---

१. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी रीति-साहित्य, पृ० २८
२. डा० रसाल : रस छंदालंकार, पृ० २५
३. वाङ्मय विमर्श, पृ० १३३
४. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत-दर्शन

काव्य को राम के 'सुमिरन' का बहाना मानने वाले कवि दरिया साहब का साहित्य स्वतः अलंकारों से रहित नहीं है । भक्त प्रवर नाभादास इस कथन के अपवाद नहीं हैं । 'भक्तमाल' के अंत मे नाभादास ने लिखा है :

"हरिजन को गुण बरन ते, जो करै असुया आय ।
इहाँ उदर बाढ़ै बिथा, औ परलोक नसाय ॥
जो हरि प्राप्ति की आस है, तौ हरिजन गुन गाय ।
नतरु सुकृत भुंजे बीच ज्यों, जनम जनम पछिताय ॥"[1]

स्पष्ट है इस आदर्श को हृदय में धारण करने वाले कवि नाभादास काव्य को "हरिजन सुजस गान" एक साधन मात्र मानते थे । परन्तु इतना होते हुए भी उनका काव्य अलंकारों की छटा से युक्त है । सच बात यह है कि नाभादास न तो अलंकारों की छटा से पाठकों का मन सम्मोहित करने के लिए 'भक्तमाल' की रचना करने बैठे थे, न उन्होंने सजग होकर इस ओर ध्यान ही दिया था । परन्तु भक्तों की कीर्ति रूपी निर्मल स्निग्ध चन्द्रिका में अवगाहन करके वे भावुकता के रंग में अनुरंजित हो उठते थे । ऐसे ही क्षणों में लिखित भावुकता से पूर्ण स्थलों में अलंकारो ने उनके काव्य में स्थान पा लिया है । अलंकारों के प्रयोग से नाभादास की कविता रमणीय और भाषा प्रभावशाली बन गई है ।

नाभादास के इस लोकप्रिय ग्रन्थ मे सामान्यतया निम्नलिखित अलंकारों का प्रयोग हुआ है :

(क) अनुप्रास (ख) उपमा
(ग) रूपक (च) अतिशयोक्ति

इन समस्त अलंकारों में अनुप्रास और उपमा अलंकार नाभादास को विशेष प्रिय थे । यहाँ पर 'भक्तमाल' से अनुप्राम के कुछ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

(१) **"कलिकाल कठिन जग जीति यों, राधौ की पूरी परी ॥**
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी ।
सूरज ज्यों जल ग्रहै, हरि ताही ज्यों त्यागी ॥
सुन्दर शील सुभाव, सदा संतन सेवाव्रत ।
गुरु धर्म निकल निर्बहचौ, विश्व में बिदित बडौ भृत ॥

---

१. भक्तमाल, पृ० ९३६-३७

अल्हराम रावल कृपा, आदि अंत धुकती धरी ।
कलिकाल कठिन जग जीति यौं राघौ की पूरी परी ।।"[१]

(२) 'गुननिकर' 'गदाधरभट्ट' अति, सबहिन कौ लागै सुखद ।।
सज्जन, सुहृद, सुशील, बचन आरज प्रतिपालय ।
निर्मत्सर, निहकाम कृपा करुणा कौं आलय ।।
अनन्य भजन दृढ़ करनि धरयौ बपु भक्तनि काजै ।
परम धरम कौ सेतु, विदित वृन्दाबन गाजै ।।
भागौत सुधा बरषै बदन, काहू कों नाहिन दुखद ।
गुननिकर 'गदाधरभट्ट' अति, सबहिन को लागै सुखद ।।"[२]

(३) "जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंड मंडलेश्वर आन कवि ।।
प्रचुर भयो तिहुँलोक 'गीतगोविन्द' उजागर ।
कोक काव्य नव रस सरस सिंगार को सागर ।।
अष्टपदी अभ्यास करै तेंहि बुद्धि बढ़ावै ।
(श्री) राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चय तहं आवै ।।
संत सरोरुह खंड को 'पद्मा' पति सुख जनक रवि ।
जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंडमंडलेश्वर आन कवि ।।"[३]

(४) "कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीक 'तुलसी' भयौ ।
त्रेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्म हत्यादि परायन ।।
अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन रस भक्त रटत अह निसि ब्रतधारी ।।
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक 'तुलसी' भयौ ।।"[४]

इन उद्धरणों में अनुप्रासालंकार अपने सहज और स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुआ है । उपमा अलंकार का प्रयोग सामान्य रूप से अधिक हुआ है । कवि ने वर्णित चरित्रों की महत्ता प्रमाणित करने के लिए उन्हें कभी पारस, कभी कल्पतरु, कभी चन्द्र के समान निर्मल और निष्कलंक कहा है । इन स्थलों में उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं:

---

१. भक्तमाल, पृ० ७८९ २. वही, पृ० ७९३ ३. वही, पृ० ३४९-५०
४. भक्तमाल, पृ० ७६२

"जंगली देश के लोग सब, 'परशुराम' किय पारषद ।।
ज्यों चंदन कौपवन नीम्ब पुनि चन्दन करई ।
बहुत काल तम निबिड़ उदै दीपक ज्यौं हरई ।।...."[१]

(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन, काल बृथा नहिं बित्तयौ ।।
सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये ।
सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये ।।
प्रसिद्ध बाग सों प्रीति सुहृथ कृत करत निरंतर ।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर ।।

(श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्तिदत्त, मन बच क्रम करि अटल दयौ ।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काज बृथा नहिं बित्तयौ ।।"[२]

उपर्युक्त प्रथम छंद में अन्तिम दो पंक्तियों में कवि ने प्रभाव साम्य के आधार पर स्वस्थ उपमा की योजना की है। द्वितीय छंद में अंतिम दो पंक्तियों में उपमा और उत्प्रेक्षा की योजना भी दर्शनीय है। रूपक अलंकार के कुछ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

"संसार अपार के पार को, सुगम रूप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीक तुलसी भयौ ।।"

उपर्युक्त पंक्तियों मे कवि ने तुलसी के उपदेश एवं राम नाम को एक नौका के रूप में प्रस्तुत किया है और तुलसी को कर्णधार माना है, जो लोगों को इस माध्यम से भवसागर तर जाने का उपदेश करते है। उपमा का उदाहरण एक इस पंक्ति में देखिए :

"भक्तनि संग भगवान नित (ज्यों) गऊ बच्छ गोहन फिरै ।"[३]

राघवदास के चरित्र पर प्रकाश डालता हुआ कवि कहता है कि उन्हें काम, क्रोध आदि अग्नियों की लहर नही व्याप्त हुई, उसी प्रकार जैसे सूर्य किरणों से जल को सोख लेता है और पुनः अवसर पर बरसता है। इस तथ्य को कवि ने उपमा अलंकार के द्वारा प्रस्तुत किया है :

---

१. भक्तमाल, पृ० ७९१
२. भक्तमाल, पृ० ३१८-१९
३. भक्तमाल, पृ० ४४९

"काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी ।
सूरज ज्यौं जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यौं त्यागी ।।"[१]

सम्पूर्ण भक्तों के चरित्र प्रशंसा से पूर्ण हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि कवि ने अत्यन्त भक्ति भाव से कवियों, भक्तों के चरित्र बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णित किये हैं । तुलसी, कबीर आदि भक्तों के चरित्रों में अतिशयोक्ति अलंकारों का रूप स्पष्ट दृष्टिगत होता है ।

कवि नाभादास की कल्पना में मौलिकता, शब्द विन्यास में सरलता, रस में विभोर कर देने की शक्ति, सभी कुछ कवि के प्रतिभा के परिचायक हैं ।

१. भक्तमाल, पृ० ७८९

अष्टम परिच्छेद

भाषा

भाषा का कार्य साहित्यिक दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वक्ता के विचारों को श्रोता के मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए भाषा अत्यन्त सरल माध्यम है। भाषा विचार-विनिमय की आधार-शिला है, भावों के व्यक्तीकरण का सुन्दर रूप है। काव्य के मुख्य उपकरणों में भाषा और भाव प्रमुख माने जाते हैं।

भाषा का जन्म मानव सभ्यता के साथ हुआ। भाषा के बिना चेतन भी पशु सदृश प्रतीत होता है। मानव के लिए उसके हृदय में उठे हुए भाव अथवा विचारों को व्यक्त करने के लिए किसी न किसी साधन की आवश्यकता रही होगी और उसी क्षण से भाषा अंकुरित होने लगी होगी।

मानव सभ्यता के साथ भाषा का उत्कर्ष, परिमार्जन, परिवर्द्धन और विकास हुआ। क्रमशः मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गई और उसे नवीन शब्दों की रचना करनी पड़ी। भाषा के विकास के सम्बंध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का प्रस्तुत कथन पठनीय होगा :

"भाषा का आरम्भ कब से हुआ, कैसे हुआ, इसका निश्चित पता नहीं चलता। इस सम्बध में अनुमान के अतिरिक्त और कोई क्रिया सहायक नहीं होती। बच्चे आज दिन, जिस प्रकार भाषा सीखते हैं उसी के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि पुराकाल में मनोगत भावों की अभिव्यक्ति आंगिक चेष्टाओं द्वारा होती रही होगी। आगे चलकर व्यक्त ध्वनियों से भी उस क्रिया में सहायता मिली और अंत मे लिखित भाषा का उद्भव हुआ।"[1] ईश्वर ने वाणी की अद्भुत और अमोघ शक्ति मनुष्य को दी और उसने उसका विस्तार

---

१. वाङ्मय विमर्श, पृ० ४५५

करके यह प्रमाणित कर दिया कि ज्ञानवान मनुष्य ने उसके दान का सचमुच सदुपयोग किया ।[१]

भाषा हृदय में उठे हुए भावों के व्यक्तीकरण का एक माध्यम है । भाषा का मुख्य कार्य है, विचारों का आदान-प्रदान । भाषा का विचारों से अटूट सम्बध है, किन्तु वाणी के लिए विचारों का होना अधिक महत्त्व नहीं रखता । "'भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा एक प्राणी दूसरे प्राणी पर अपने विचार-भाव अथवा इच्छा प्रकट करता है ।"[२]

साहित्य और भाषा का घनिष्ट सम्बंध है । कारण कि बिना साधन अथवा माध्यम के साहित्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती । साहित्य से हमारा तात्पर्य लिखित साहित्य से है । भाषा एक ऐसा साधन है जिससे विचारों को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है । विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने के अनन्तर यदि उसे लिपिबद्ध कर दिया जाय तो, वह साहित्य के अतीत के हज़ारों वर्षों का लेखा-जोखा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है । जनता की चित्तवृत्तियों के संचित कोष का नाम ही साहित्य है । किन्तु यदि जनता की चित्तवृत्ति को भाषा का सहारा न प्राप्त हो तो वह साहित्य कैसे हो जायेगा । अतः साहित्य के लिए भाषा अनिवार्य तत्व है । कहानी, कविता, नाटक आदि साहित्य के विभिन्न अंग है । साहित्य के इन स्वरूपों के लिए भी भाषा आवश्यक है ।

जिस समय नाभादास का आविर्भाव हुआ था, उस समय तक कवियों द्वारा हिन्दी भाषा को काव्य में मान्यता मिलने लगी थी । उस समय के सभी कवियों ने हिन्दी भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाकर, अपनी उदात्त भक्ति से पूर्ण विचार-धारा को जन-जीवन तक पहुँचाया । संस्कृत भाषा की क्लिष्टता और दुरूहता से लोग दूर भाग रहे थे । जन-सामान्य में संस्कृत का कोई विशेष आदर न रह गया था, किन्तु समय-समय पर संस्कृत के विद्वान् जनता को संस्कृत की ओर आकर्षित करने के लिए प्रयत्नशील थे ।

नाभादास का आविर्भाव काल प्रामाणिक रूप से संवत् १६५७ माना गया है ।[३] हिन्दी के इतिहास मे नाभादास का युग साहित्य की उन्नति और विकास

---

१. वही, पृ० ४५६

२. डा० बाबू राम सक्सेना : सामान्य-भाषा-विज्ञान, पृ० २

३. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय-विमर्श, पृ० २७२

की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ माँझी गोस्वामी तुलसीदास एवं सूरदास उनके समकालीन थे। 'प्रेम दीवानी' मीरां, संत साहित्य के उज्ज्वल रत्न सुन्दरदास तथा मलूकदास, 'कठिन काव्य के प्रेत' आचार्य केशवदास, सुप्रसिद्ध नीतिकार गंग, बीरबल, अब्दुर्रहीम खानखाना, बल्लभ-सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों मे नन्ददास, कृष्णदास, कुभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, आदि नाभादास के समकालीन सजग और चेतनशील कवि थे। नाभादास के समकालीन उपर्युक्त इन कवियों में कुछ ने अवधी के माध्यम से शांत रस की धारा बहायी और कुछ ने ब्रजभाषा के माध्यम से ब्रह्म के गुणों का गान किया। इन कवियों में गोस्वामी तुलसीदास तथा संत मलूकदास जैसे कवि भी विद्यमान थे जिन्होंने अवधी और ब्रज, दोनों के ही माध्यम से हृदय की अनुभूति व्यक्त की, भारतीय जनता तक पहुँचने का प्रयत्न किया। नाभादास के जन्म से प्रायः २६ वर्ष पूर्व (संवत् १६३१) में 'रामचरितमानस' की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी और कुछ ही समय बाद श्रीराम की 'बिमल कथा' को विस्तार देने के साथ यह महान् ग्रन्थ अवधी के प्रचार का आधार भी बना, परन्तु इतना सब होते हुए भी ब्रजभाषा का महत्त्व अवधी से कहीं अधिक था। ब्रजभाषा ही तत्कालीन जनता की भाषा थी। नाभादास ने जनता की इसी भाषा के माध्यम से अपने बहुमूल्य ग्रन्थ 'भक्तमाल' की रचना की। नाभादास से प्रायः तीन शताब्दी पूर्व कबीरदास ने भी इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर जनता की भाषा में अपने काव्य की रचना की थी।

'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' में नाभादास जी की भाषा के सम्बंध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए श्री हरिऔध ने लिखा है :

"वैष्णवों में इनकी रचनाओं का अच्छा आदर है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने शृंगार रस से मुख-मोड़ कर भक्ति-रस की धारा बहायी और 'भक्तमाल' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें २०० भक्तों का वर्णन है। अपनी रचना में उन्होंने वैष्णवमात्र को समान दृष्टि से देखा और स्वयं रामभक्त होते हुए भी कृष्णचन्द्र जी के भक्तों में उतनी ही आदर बुद्धि प्रकट की जितनी रामचन्द्र जी के भक्तों में.... उनका ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखा गया है। इसका कारण उसकी सामयिक व्यापकता ही है।"[१]..... इनकी भाषा के विषय में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं ज्ञात होती है। जो नियम साहित्यिक ब्रज-

---

१. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३२४-३५

भाषा का मैं ऊपर लिख आया हूँ, उसका पालन इनकी कविता में अधिकतर पाया जाता है ।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य मिश्रबंधुने नाभादास जी की भाषा, शैली और लालित्य पर मुग्ध होकर कहा है कि "कविता के अनुसार इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रखेंगे।"[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषा की सराहना करते हुए कहा है कि "अपने गुरु अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति सम्बन्धित कविता की है । ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्यरचना में अच्छी निपुणता थी।"[३] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[४] तथा श्री गुलाबराय[५] ने भी इनका ब्रजभाषा के अच्छे कवियों में उल्लेख किया है ।

उपर्युक्त विद्वानों के मतों का परीक्षण करने से नाभादास की भाषा के विषय में सर्वप्रथम यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा आलोच्य कवि, ब्रजभाषा का कवि था । उद्धृत कथनों से द्वितीय बात यह निश्चित हो जाती है कि नाभादास का स्थान ब्रजभाषा के कवियों में महत्त्वपूर्ण था । आचार्य मिश्रबंधु ने उन्हें 'तोष' कवि का समकक्ष माना है । आचार्य शुक्ल जी जैसे विद्वान् तथा सन्तुलित आलोचक ने 'ब्रजभाषा' पर इनका अच्छा अधिकार था, कह कर नाभादास के भाषा-ज्ञान और कुशलता का अच्छा परिचय दिया है । इन विद्वानों के कथनों में तृतीय बात ध्यान देने योग्य यह है कि नाभादास की ब्रजभाषा या काव्य भाषा साहित्यिक या व्याकरण के नियमों द्वारा हर प्रकार से अनुशासित है । जिस ब्रजभाषा में काव्य लेखन की परम्परा सैकड़ों वर्षों से चली आ रही थी और जिस ब्रजभाषा ने सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, मीरां, रसखान, आदि कवियों को जन्म दिया, उसके विकास की परम्परा में नाभादास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा ।

महाकवि हरिऔध, आचार्य मिश्रबंधु, आचार्य शुक्ल जी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री [गुलाबराय, [आदि के कथनों पर विचार कर लेने के अनन्तर अब नाभादास की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे ।

प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं । प्रथम वह जो जनता द्वारा दैनिक जीवन

---

१. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० ३५९

२. आ० शुक्ल जी : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४८

३. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृ० ७९

४. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र: वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२

में बोलचाल के रूप में व्यवहृत होती है और द्वितीय वह जिसके द्वारा साहित्यकार अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। इसे 'साहित्यिक भाषा' या भाषा का साहित्यिक रूप कहा जा सकता है। साहित्य की रचना दोनों ही प्रकार की भाषाओं द्वारा होता है। उदाहरणार्थ गोस्वामी तुलसीदास ने साहित्यिक अवधी में 'मानस' की रचना की और मलिक मुहम्मद जायसी ने ग्रामीण अवधी में अपने 'पद्मावत' की रचना की। नाभादास की ब्रजभाषा साहित्यिक ब्रजभाषा थी। नाभादास की भाषा का रूप साहित्यिक एवं परिमार्जित है। ब्रजभाषा के जिन शब्दों की योजना हमारे कवि ने अपनी भाषा के लिए की, वे सर्वथा परिष्कृत और साहित्यिक हैं। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय छंद उद्धृत किये जाते हैं :

(१) **"मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि।**
निरखत हरखत हृदय प्रेम बरखत सुकलित कवि।
भव निस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबन नित।
जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित।
आनन्द कंद श्रीनंद सुत श्रीवृषभानु सुता भजन।
श्री भट्ट सुभट प्रगटयो अघट रस रसिकन मनमोद घन।"[१]

प्रस्तुत छप्पय मे कवि की भाषा का अत्यन्त साफ-सुथरा रूप दृष्टिगत होता है। पद-विन्यास की छटा भी दर्शनीय है। अब कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा रहे है :

(२) **"और युगन तें कमलनयन, कलियुग बहुत कृपा करी॥**
बीच दिये रघुनाथ भक्त संग ठगिया लागे।
निर्जन बन में जाय दुष्ट कर्म कियो अभागे॥
बीच दियो सो कहाँ? राम कहि नारि पुकारी।
आये सारंगपानि शोकसागर ते तारी॥
दुष्ट किये निर्जीव सब, दास प्राण संज्ञा धरी।
और युगन तें कमलनयन, कलियुग बहुत कृपा करी॥"[२]

कवि के भावों और विचारों का वहन करने के लिए भाषा सशक्त है। साहित्यिक होने पर भाषा में कहीं क्लिष्टता और दुरूहता के दर्शन नहीं होते, यद्यपि तत्सम शब्दों के प्रयोग का भी मोह कवि न त्याग सका। कवि की भाषा के

---

१. हरिऔध जी : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३५
२. भक्तमाल, पृ० ४६७

निम्नलिखित, कुछ उदाहरण भाषा की स्पष्टता, साहित्यिकता के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है :

(३) "(श्री) बल्लभजू के वंश में गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ॥
उदधि सद अक्षोभ सहज सुन्दर मित भाषा ।
गुरु वत्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साषी ॥
विट्ठलेश की भक्ति भयौ वेला दृढ़ ताकैं ।
भगवत तेज प्रताप, नमित नरवर पद जाकैं ॥
निर्विलीक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति ।
बल्लभजू के वंश में, गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ॥"[१]

(४) "(श्री) मदनमोहन सूरदास की, नाम शृंखला जुरी अटल ॥
गान काव्य गुण राशि, सुहृद, सहचरि अवतारी ।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी ॥
नवरस मुख्य सिंगार बिबिध भाँतिन करि गायौ ।
बदन उच्चरित बेर सहस पायनि ह्वै धायौ ॥
अंगीकार की अवधि यह ज्यों आख्या भ्राता जमल ।
(श्री) मदनमोहन सूरदास की, नाम शृंखला जुरी अटल ॥"[२]

ऊपर उद्धृत किये हुए इन चार छदों में प्रथम छंद के 'मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि', 'हृदय प्रेम', 'सुकलित कवि' द्वितीय छंद के 'कमल-नयन कलियुग बहुत कृपा निर्जन वन में', 'दुष्ट कर्म', 'आये सारंगपानि शोकसागर', 'दुष्ट किये निर्जीव सब', 'दास प्राण संज्ञा', 'कलियुग बहुत कृपा' तृतीय छंद के 'वल्लभजू के वंश में गुननिधि गोकुलनाथ', 'सहज सुन्दर मित भाषा', 'भलप्पन सब जगसाषी', 'भगवत तेज प्रताप' तथा चतुर्थ छंद के 'गान काव्य गुण राशि सुहृद सहचरि', 'सुख के अधिकारी', 'नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँति', 'अंगीकार की अवधि यह' आदि शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इनमें नाभादास जी की साहित्यिक भाषा का रूप प्रतिबिम्बित होता है। इन उद्धृत शब्दों में ९७ प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं। इनके प्रयोग से नाभादास की ब्रजभाषा में साहित्यिकता का समावेश हो गया है। सम्पूर्ण 'भक्तमाल' की भाषा में इसी प्रकार के साहित्यिक और परिष्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है। नाभादास का शब्द-ज्ञान और शब्द-चयन अच्छा था। इस प्रकार के सुन्दर और संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से भाषा का

१. वही, पृ० ७८३ २. वही, पृ० ७५१-५२

रूप बड़ा ही परिष्कृत और प्रभावशाली बन गया है।

उपर्युक्त उद्धरणों में 'निरखत', 'हरखत', 'विस्तारन' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग हुआ है। इनमें से तीनों का ही प्रयोग इस प्रकार हुआ है कि उनकी अपनी विशेषता हर प्रकार से सुरक्षित है। ये संस्कृत के ही शब्द हैं, परन्तु कवि ने अपनी आवश्यकता के अनुसार इन्हे इस प्रकार तोड़-मरोड़ लिया है कि वे अपनी विशेषता और मौलिक रूप को सुरक्षित रखे हुए हैं।

नाभादास की भाषा में देशज और ग्रामीण ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रचुरता के साथ प्रयोग हुआ है। परन्तु वे भाषा के साहित्यिक रूप में किसी प्रकार से बाधक नही हैं। यहाँ पर इस प्रकार के कतिपय शब्दों को उद्धृत करना आवश्यक है :

'भलप्पन', 'वत्तन', 'असोम'[१], 'ठगिया'[२] 'जुरी', 'रहसि', 'पायनि', 'जमल', 'आख्या'[३], 'नोख', 'रीझि'[४], 'पगे', 'सजी', 'तारन'[५], 'ठनै', 'खोयो', 'जिनि', 'परचौ'[६], 'ऊमर', 'थापी'[७], 'तितनेई', 'पधति', 'न्यारी', 'धारयौ', 'तारक', 'बियो', 'जतन'[८], 'जवन', 'सबनि', 'जात', 'भई'[९], 'गाइ', 'दए', 'भए'[१०]। इस प्रकार के शब्दों की सूची बहुत बड़ी हो सकती है। विस्तार के भय से यहाँ पर कथन के समर्थन में कतिपय उद्धरण दिये गए हैं। इन शब्दों में ग्रामीण भाषा के माधुर्य के साथ ही साथ अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जाता है। यही इनकी विशेषता है। ग्रामीण भाषा के शब्दों के प्रयोग से काव्य की भाषा में सरसता और स्वाभाविकता आ जाती है। नाभादास के 'भक्तमाल' की भाषा में यह सरसता सर्वत्र बनी हुई है।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि क्या नाभादास काव्य को सर्वगुणों से समलंकृत करके उसे हिन्दी जगत् के समक्ष एक आदर्श ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे या केवल भक्तों के चरित्र-गान के द्वारा भक्तिधारा-प्रवाह में अपूर्व योगदान देना चाहते थे। उत्तर स्पष्ट है नाभादास जी भक्त पहले थे, परन्तु उनकी मौलिकता और काव्य-प्रतिभा के समक्ष ये सभी विशेषताएँ स्वतः नतमस्तक हैं।

नाभादास जी की ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ है। 'भक्तमाल' से प्रकट होता है कि कवि को संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। प्रस्तुत कथन की सविस्तार व्याख्या

---

१. भक्तमाल, पृ० ७८३
२. वही, पृ० ४६७
३. वही, पृ० ७५१-५२
४. वही, पृ० ५८१
५. वही, पृ० ५७९
६. वही, पृ० ६८०
७. वही, पृ० २६३
८. वही, पृ० २६७
९. वही, पृ० २७७-७८
१०. वही, : ३०४

करने के पूर्व यहाँ कतिपय छंदों को उद्धृत कर देना आवश्यक है :

(१) "गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ।
श्री बल्लभ गुरुदत्त भजनसागर गुनआगर ।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर ॥
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत ।
ब्रजरज अति आराध्य, वहै धारी, सर्वसु चित ॥
सानिध्य सदा हरिदास वर्य, गौर श्याम दृढ़ व्रत लियौ ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ॥"[१]

(२) "(श्री) हरिबंश गुसाँई भजन की, रीति सकृत कोउ जानिहै ॥
(श्री) राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज केलि दंपति, तहाँ की करत खवासी ॥
सर्बसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।
बिधि निषेध नहिं दास अनन्य उतकट व्रतधारी ॥
व्याससुवन पथ अनुसरै, सोई भलै पहिचानिहै ।
(श्री) हरिबंश गुसाँई भजन की, रीति सुकृत कोउ जानिहै ॥"[२]

(३) "श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥
अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा पद्मावति, नरहरि ।
पीपा, भावानन्द, रैदास, धना सेन, सुरसुर की धरहरि ॥
औरों शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर ।
विश्वमंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर ॥
बहुत काल बपुधारिकै प्रणत जनन कौं पार दियौ ।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥"[3]

(४) 'श्रीरामानुज' पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसरयौ ॥
'देवाचारज' द्वितीय महामहिमा 'हरियानंद' ।
तस्य 'राघवानन्द' भए भक्तन को मानंद ॥
पत्रावलम्ब पृथिवी करी व काशी स्थाई ।
चारि बरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई ॥

---

१. भक्तमाल, पृ० ५८१ २. वही, पृ० ६०३-६०४
३. वही, पृ० २८८

तिनके 'रामानन्द' प्रगट, विश्व मंगल जिन्ह वपु धरयो।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि हूवै अनुसरयो ॥"[1]

(५) "खेमालरतन राठौर कै, सुफल बेलि मीठी फली ॥
हरीदास हरिभक्त भक्ति मंदिर कौ कलसौ ।
भजन भाव परिपक्व, हृदै भागीरथि जलसौ ॥
त्रिधा भाँति अति अनन्य रामकी रीति निबाही ।
हरि गुरु हरि बल भाँति तिनहि सेवा दृढ़ साही ॥
पूरन इन्दु प्रमुदित उदधि, त्यों दास देखि बाढ़ै रली ।
खेमालरतन राठौर कै, सुफल बेलि मीठी फली ॥"[2]

इन पदों का निर्वाचन विशेष सतर्कता के साथ नहीं किया गया है। इनमें कवि की संस्कृतनिष्ठ भाषा का सुन्दर रूप दर्शनीय है। प्रथम छंद के 'गुनआगर', 'बानी बंदित विदुप सुजस गोपाल अलंकृत', 'ब्रजरज अति आराध्य', 'सर्वसुचित्त', 'सानिध्य सदा हरिदास वर्य', द्वितीय छंद के 'रीति सुकृत', 'रामचरण प्रधान अति सुदृढ़', 'कुजकेलि दषति', 'सर्बसु महाप्रसाद प्रसिद्ध अधिकारी', 'विधि निषेध', 'अनन्य उत्कट ब्रतधारी', 'सुकृत' तृतीय छंद के 'सेतुजग', 'शिष्य प्रशिष्य एक' 'विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर', 'बहुत काल वपुधारी', 'प्रणत जन', 'सेतु', चतुर्थ छंद के 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत', 'महामहिमा', 'तस्य', 'पत्रावलम्ब पृथ्वी', 'स्थाई', 'विश्वमंगल वपु', तथा पंचम छंद के 'भजन भाव परिपक्व, हृदै भागीरथि जल', 'त्रिधा भाँति अति अनन्य राम की रीति', 'पूरन इन्दु प्रमुदित उदधि' आदि पूर्ण रूप से संस्कृत के शब्द हैं। इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग अन्य छंदों में भी हुआ है। नाभादास की कविता में संस्कृत के जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे सब सामाजिक जीवन में नित्यप्रति बोले जाने वाले शब्द हैं। इनके प्रयोग से भाषा परिष्कृत और स्टैण्डर्ड बन गई है। नाभादास की कविता की संस्कृतनिष्ठ भाषा जनसाधारण में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। नाभादास के समकालीन 'राम चंद्रिका' के यशस्वी लेखक आचार्य केशवदास ने भी संस्कृतनिष्ठ भाषा में अपने काव्य ग्रन्थों की रचना की थी, परन्तु दोनों की भाषा में महान् अन्तर है। नाभादास ने पवित्र एवं कल्याणकारी विषय के अनुकूल पवित्र भाषा देववाणी के सरल शब्दों को लेकर अपनी काव्यधारा को और भी अधिक पुनीत बना दिया है और दूसरी ओर केशवदास जी ने आचार्यत्व-प्रदर्शन के लिए संस्कृत भाषा लिखी है।

---

१. भक्तमाल, पृ० २८७-८८ २. वही, पृ० ७४४

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' की रचना में संस्कृत के अनेकानेक तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ : आचारज (आचार्य), जगति (जगत) रति (रत)[१] दुतिय (द्वितीय), सेतु (सेत), जनन (जन का बहु वचन), आगर (आगार)[२], अपर्यो (अर्पित किया), निर्वान (निर्वाण)[३], सोती (श्रोत्री), निर्वही (निर्वाह)[४], भागौत (भागवत), दरस (दर्शन), परस (स्पर्श)[५], आचारज (आश्चर्य), साँचो (सत्य), कारज (कार्य)[६], सकलात (सकल), सौच (शौच)[७], परायन (परायण), अगनित (अगणित), उभै (उभय), दिसि (दिश)[८], जनम (जन्म), करम (कर्म), श्रवन (श्रवण), दिष्टि (दृष्टि), परकाशी (प्रकाशित), वरन (वर्ण), दिबि (दिव्य)।[९]

इन तद्भव शब्दों का प्रयोग दो दृष्टियों से हुआ है। प्रथम यह कि कवि ने भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है और दूसरे कहीं-कहीं पर तुकान्त और छंद की शुद्धता के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है।

'भक्तमाल' की रचना खड़ी-बोली के विकास के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रस्तुत ग्रन्थ में खड़ीबोली का सुन्दर विकासमान रूप उपलब्ध होता है। छंदों में क्रियापदों के अतिरिक्त शब्दों की योजना ऐसी हुई है जिनसे खड़ी-बोली का पूर्णरूप से आभास मिल जाता है। उदाहरणार्थ कतिपय पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

(१) "(श्री) बल्लभजू के बंश में, सुरतरु गिरिधर भ्राजमान ॥
अर्थ धर्म काम मोक्ष भक्ति अनपायनि दाता।
हस्तामल श्रुति ज्ञान सब ही शास्त्र को ज्ञाता ॥
परिचर्या ब्रजराज कुँवर के मनको कर्षं।
दरशन परम पुनीत सभा तन अमृत बर्षं ॥
विट्ठलेश नंदन सुभाव जग कोऊ नहिं ता समान।
(श्री) बल्लभजू के बंश में सुरतरु [गिरिधर भ्राजमान ॥"[१०]

---

१. भक्तमाल, पृ० २७७-७८
२. वही, पृ० २८८
३. वही, पृ० ३०८
४. वही, पृ० ३२८
५. वही, पृ० ४७०
६. वही, पृ० ४७४-७५
७. वही, पृ० ५५७
८. वही, पृ० ५५९-६०
९. वही, पृ० ५६३
१०. वही, पृ० ७८३

(२) "कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीक "तुलसी" भयौ ॥
त्रेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उद्धरें ब्रह्महत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन रस मत्त रटत अह निसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीवन निस्तार हित बाल्मीक 'तुलसी' भयौ ॥"[१]

(३) "खेमालरतन राठौर के, अटल भक्ति आई सदन ॥
'रैना' पर गुण राम भजन भागौत उजागर ।
प्रेमी परम 'किशोर' उदर राजा रतनाकर ॥
हरिदासन के दास, दसा ऊँची ध्वज धारी ।
निर्भै, अननि, उदार, रसिक, जस रसना भारी ॥
दशधा संपति, संत बल, सदा रहत प्रफुलित बदन ।
खेमालरतन राठौर के, अटल भक्ति आई सदन ॥"[२]

(४) "(श्री) बल्लभजू के वंश में गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ।
उदधिसद अक्षोभ सहज सुन्दर मित भाषी ।
गुरु वत्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साषी ॥
बिट्ठलेश की भक्ति भयौ वेला दृढ़ ताकैं ।
भगवत तेज प्रताप, नमित नरवर पद जाकैं ॥
निर्विलीक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति ।
बल्लभजू के बंश में, गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ॥"[३]

इन पदों में रेखांकित अंश विशेष ध्यान देने योग्य हैं । इनमें खड़ी बोली का विकासमान रूप व्यक्त हुआ है । इन रेखांकित अंशों में यदि खड़ी बोली के क्रियापदों को रख दिया जाय तो भाषा का रूप खड़ीबोली से बहुत निकट हो जायेगा । 'भक्तमाल' का अनुमानित रचना-काल लगभग संवत् १७०० है। इस दृष्टि से 'भक्तमाल' खड़ीबोली की विकास यात्रा का एक सीमा-स्तम्भ (Mile Stone) है ।

'भक्तमाल' में कवि ने उर्दू, फारसी, अरबी आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है :

१. भक्तमाल, पृ० ७६२ २. वही, पृ० ७३८ ३. वही, पृ० ७८३-८४

(१) खवासी : **"कुंज केलि दंपति, तहाँ की करत खवासी ।"**[१]

(२) कज़ी : इस शब्द की व्युत्पत्ति कज़ा शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है चूक हो गई :

"ऋषिराज सोचि कह्यो नारि सों, आज भक्ति मेरी कजी" ।[२]

(३) तुरक : यह शब्द सामान्य रूप से मुसलमान के अर्थ मे व्यवहृत होता है ।

(४) काजी : **"हिन्दू तुरक प्रमान "रमैनी, शबदी, साखी" ।**[३]

काजी अजित अनेक देखि परचै भै भीते ।[४]

(५) दादि : इस शब्द का अर्थ है न्याय अथवा दया

"दई दास की दादि, हुंडी करि फेरि पठायौ ।"[५]

(६) अजीज : इस शब्द का अर्थ है प्रिय या निकट ।

"असुर अजीज अनीति अगिनि मैं हरिपुर कीधौ ।"[६]

(७) नेजा : इस शब्द का अर्थ है भाला ।

"परमभक्ति परताप धर्मध्वज नेजा धारी ।"[७]

(८) सराय : इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित है ।

"हंडिया सराय देखत दुनी हरिपुर पदवी को चढघो ।"[८]

उपर्युक्त पंक्ति में 'पदवी' शब्द फ़ारसी से उर्दू में प्रविष्ट हुआ है ।

(९) दुनिया : इस शब्द का अर्थ है संसार (विश्व) ।

'दूबलौ' जाहि दुनिया कहै, सो भक्तभजन मोटौ महंत ।"[९]

किन्तु इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अल्प है । नाभादास सम्राट अकबर के समकालीन थे । इनसे प्रायः २०० वर्ष पूर्व से इस्लामी संस्कृति का झंडा देश पर फहरा रहा था । इस कारण 'भक्तमाल' (जैसे जनता और भक्तों के लिए लिखित ग्रन्थ) में इतने उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग किसी प्रकार से आश्चर्य-वर्द्धक नहीं है । 'भक्तमाल' के सर्वप्रथम टीकाकार श्री प्रियादास ने भी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग टीका में किया है । नाभादास जी के समकालीन संतकवि मलूकदास ने अपने स्फुट काव्य में फारसी, अरबी के शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक किया था । मलूकदास की बानी से यहाँ पर (तुलनात्मक अध्ययन के लिए) एक छंद उद्धृत किया जाता है :

---

१. भक्तमाल, पृ० ६०४ २. वही, पृ० ४७२ ३. वही, पृ० ४८५
४. वही, पृ० ५६६ ५. वही, पृ० ६७३ ६. भक्तमाल, पृ० ८०९
७. वही, पृ० ८६७ ८. वही, पृ० ८२७ ९. वही, पृ० ८७७

है हजूर नहि दूर हमा जा भरपूर ।
जाहिर जहान, जाका जहूर पुरनूर ॥
बेसबूत बेनमून बेचगून ओस्त ।
हमा ओस्त हमा अजोस्त जान जानां दोस्त ॥
शबो रोज जिकर फिकरही में मशगूल ।
तेरी दरगाह बीच पड़े हैं कबूल ॥
साहब है मेरा पीर कुदरत क्या कहिये ।
कहता मलूक बन्दा, तक पनाह रहिये ॥[1]

नाभादास का काव्यादर्श संतों का गुणगान करना था । काव्य की रचना उन्होंने प्रतिभा-प्रदर्शन या काव्य-चातुर्य को प्रदर्शित करने के लिए नहीं की थी । फिर भी नाभादास की भाषा में कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है । इस प्रकार के प्रयोग बड़े स्वाभाविक और भाषा में शक्ति बढ़ाने वाले प्रमाणित होते हैं । 'भक्तमाल' से यहाँ इस प्रकार के कतिपय उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं :

(१) **बार न बांकौ भयौ, गरल अमृत ज्यों पियौ**[2]
(२) **लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरिधर भजी**[3]
(३) **प्रसिद्ध प्रेम की बात**[4]
(४) **लौलेस न जानै**[5]
(५) **तनमन धन परिवार सहित सेवत संतन कंह**[6]
(६) **जो नहिं सिर चालन करै**[7]
(७) **दुतिय दिवाकर अवतरयो**[8]
(८) **बिनहि बीज के अंकुर भयौ**[9]
(९) **जस बितान जग में तन्यो**[10]
(१०) **ज्यों चन्दन को पवन नींब पुनि चन्दन करई**[11]

---

१. मलूकदास की बानी, पृ० २०
२. वही, पृ० ७१९
३. वही, पृ० ७१८
४. वही, पृ० ७०४
५. वही, पृ० ६७९
६. वही, पृ० ६२७
७. वही, पृ० ५६३
८. वही, पृ० ५७४
९. वही, पृ० ५२७
१०. वही, पृ० ७८८
११. वही, पृ० ७९१

(११) दोष सपनेहू उर नहि आनै[1]

(१२) धर्म की धुजा[2]

नाभादास की 'भक्तमाल' में भाषा का प्रवाह बड़ा सराहनीय है। पाठक शब्दों की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ भावों के बहुमूल्य रत्न को प्राप्त कर लेता है। यह भाषा-प्रवाह प्रायः सम्पूर्ण वर्ण्य-विषय में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए यहाँ दो-तीन पदों को उद्धृत किया जाता है :

(१) "बिदित बात जग जानिये, हरि भये सहायक 'सेन' के ॥
प्रभुदास के काज रूप नापित कौ कीनौ।
छिप्र छुड़हरी गही पानि दर्पन तहं लीनौ ॥
तादृस ह्वै तिहिं काल भूप के तेल लगायौ।
उलटि राव भयौ शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ ॥
स्याम रहत सनमुख सदा, ज्यों बच्छ हित धेन के।
बिदित बात जग जानिये, हरि भये सहायक 'सेन' के ॥" [3]

(२) "धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये ॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरज मानत जगत में कहुं निपुज्यौ कहुं वै बयौ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥"[4]

(३) "कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्ति बिमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रतदान, भजन बिनु तुच्छ दिखायौ ॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी, शबदी, साखी।
पक्षपात नहिं बचन, सबही के हित की भाखी ॥
आरूढ दसा ह्वै जगतपर, मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥"[5]

इन छंदों में कहीं-कहीं अनुप्रास अलंकार की छटा ने भाषा में प्रवाह का समा-

---

१. भक्तमाल, पृ० ७९० २. वही, पृ० ८४२ ३. भक्तमाल, पृ० ५३१
४. वही, पृ० ५२७ ५. वही, पृ० ४८५

वेश कर दिया है । परन्तु 'भक्तमाल' में शब्दों की योजना प्रमुख है। इसी शब्द-योजना के कारण भाषा में प्रभावित करने की शक्ति है। द्वितीय छप्पय की चतुर्थ पंक्ति में व्यंग्य ध्वनि मुखर उठी है ।

नाभादास का भाषा और भावाभिव्यक्ति पर अच्छा अधिकार था । कवि ने इच्छानुसार विषय को विस्तार और संक्षिप्तता प्रदान की है । कहीं-कहीं पर एक ही भक्त का चरित दो-दो छंदों में व्यक्त किया है और कहीं-कहीं दर्जनों संतों का चरित्र एक ही छंद में वर्णित किया गया है । यह कवि की भाषा-शक्ति और भाषाधिकार को प्रमाणित करता है । निम्नलिखित छंद में कवि ने केवल अंगद जी का चरित वर्णित किया है :

"अभिलाष भक्त 'अंगद' कौ पुरुषोत्तम पूरन करचौ ॥
नग अमोल इक, ताहि सबै भूपति मिलि जाचैं ।
साम, दाम, बहु करैं, दास नाहिन मत काचैं ॥
एक समै संकट में, लै वै पानी महि डारचो ।
"प्रभो ! तिहारी वस्तु", बदन ते बचन उच्यारचो ॥
पाँच दोय सत कोस ते, हरि हीरा लै उर धरचो ।
अभिलाष भक्त 'अंगद' को, पुरुषोत्तम पूरन करचौ ॥"[१]

इस चरित में अनेक विषयों और संदर्भों का उल्लेख करते हुए कवि ने एक कथा का भी वर्णन किया है। पाँच पंक्तियों के इस छंद में कवि ने बड़ी कुशलता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन किया है । अब इसके विरुद्ध एक ऐसा छंद देखिये जिसमें कवि ने बाइस भक्तों का चरित एक ही साथ वर्णित किया है :

"गुनगन बिसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ॥
वोहित्थ, रामगुपाल, कुंवरबर, गोबिन्द, मांडिल ।
छीतस्वामी, जसवंत, गदाधर, अनंतानंद भल ॥
हरिनाभमिश्र, दीनदास, बछपाल, कन्हर जसगायन ।
गोसू, रामदास, नारद, श्याम पुनि हरिनारायन ॥
कृष्णजीवन, भगवानजन, श्यामदास, बिहारी अमृतदा ।
गुन गन बिसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा ॥"[२]

भाषा की अन्य विशेषताएँ चित्रमयता और संगीत तत्व हैं । कवि की भाषा इतनी सशक्त है कि वह हमारे सम्मुख अतीत के चरित्रों का केवल लेखा-जोखा ही नहीं प्रस्तुत करती, वरन् एक पूर्ण चित्र भी चित्रित करने में समर्थ है। किसी

१. भक्तमाल, पृ० ७०६ २. वही, पृ० ८२९

विशेष चरित्र से सम्बद्ध छप्पय पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह चरित्र स्वतः आकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गया है। मीरां, केशवभट्ट काश्मीरी आदि के वर्णन ऐसे ही हैं। भाषा मे ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग के कारण संगीत तत्व भी यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होता है।

नाभादास की भाषा में पाठकों एवं श्रोताओं को प्रभावित करने की शक्ति, भाषा प्रवाह, भाषा की मधुरता आदि गुण विद्यमान हैं। कवि के साहित्य में भाषा सौन्दर्य के निम्नलिखित कारण है :

(१) आलोच्य कवि नाभादास ने अपने भावों की अभिव्यंजना का माध्यम दैनिक जीवन में व्यवहृत व्रजभाषा को बनाया है। इस व्रजभाषा में खड़ीबोली का विकासशील रूप, अरबी, फ़ारसी, देशज तथा अन्य प्रकार के ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो भाषा की स्वाभाविकता को बढ़ाने में सहायक हैं।

(२) सुन्दर शब्द-योजना, व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग तथा उच्चारण के लिए शब्दों के रूप में यतकिंचित परिवर्तन कर लेने से कवि की भाषा में सराहनीय प्रवाह उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद देखिये। इसमें 'कवित्त' के स्थान पर 'कबित', 'चलाने' के स्थान पर 'चालन', 'वर्ण' के स्थान पर 'बरन', 'दिव्य' के लिए 'दिवि', 'गुण' की कर्कशता को दबाने के लिए 'गुन' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है :

'सूर' कबित सुनि कौन कबि, जो नहिं सिर चालन करै ॥
उक्ति, ओज, अनुप्रास, बरन अस्थिति, अति भारी ।
बचन प्रीति निर्बाह, अर्थ अद्‌भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिबि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी ।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन श्रवननि धरै ।
'सूर' कबित सुनि कौन कबि, जो नहिं सिर चालन करै ॥"

(३) नाभादास की भाषा में शब्द अपेक्षित भावों को प्रकट करने में समर्थ है। उनके शब्द जिस भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं उसे पूर्णतया प्रकट कर देते हैं। पाठकों को दुरूह शब्दों के जाल (या जंजाल) में भटकने की आवश्यकता नहीं है।

(४) कवि की भाषा में सजीवता है। उसमें पाठकों को प्रभावित करने की शक्ति है। भाषा की सजीवता के उदाहरण पीछे पृष्ठों में दिये गए हैं।

नवम परिच्छेद

नाभादास की प्रतीक योजना

विशेष धर्म या गुण के प्रकाशक प्रकृति के कतिपय पदार्थ जो सामान्यतया सब मनुष्यों के हृदय में एक-सी ही भावना जागृत करते हैं, काव्य जगत में 'प्रतीक' कहलाते हैं। प्रतीक या प्रतीकवाद का इतिहास मानव के विकास का इतिहास है। प्रतीक का मूलरूप में उन वस्तुओं से सम्बंध था जो जाति, गुण, क्रिया या अन्य किसी सादृश्य के द्वारा किसी वस्तु विशेष का अथवा व्यक्ति के विचारों का बोध कराती थी। शनैः-शनैः मानव ने अपनी बुद्धि, कल्पना-शक्ति और चिंतन के द्वारा वस्तुओं के सादृश्य सम्बंधी संकेतों से ध्यान हटाकर उनके स्थान पर आरोपित या काल्पनिक भाव की सृष्टि की। राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय गान ये कतिपय ऐसे प्रतीक हैं जिनका लाक्षणिक अर्थ ही मान्य है। राष्ट्रीय झंडा केवल डेढ़ गज़ टुकड़े का प्रतीक न होकर हमारे देश के अपार जनसमूह के गौरव का प्रतीक है। प्रतीकों का प्रयोग "गागर में सागर" भरने के अभिप्राय से किया गया है। प्रतीक वह वस्तु या वस्तुबोधक तत्व है जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि हो। काव्य में अधिकांश प्रतीक वाह्यजगत से ही सम्बद्ध हैं, कारण कि वे सभी के हृदय में एक ही भावना को जागरित करते हैं।[1]

प्रतीकों के जन्म, विकास और अत्यधिक प्रयुक्त होने के अनेक कारण हैं। प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यक्ति सरल और प्रभावशाली बन जाती है। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दों में "ये जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की

---

१. The term given to a visible object representing to the mind of semblance of something which is not shown but realized with it.

Encyclopaedia Britanica (1947), p. 700

अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है। ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपादेयात्मक नहीं है। इनका उद्देश्य सत्य को सौंदर्य से समन्वित करना है। ये यह भी जानते हैं कि काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत ये काव्य के आधारभूत अंश हैं। केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठकों में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीकों का विश्लेषण करने पर उनमें सच्ची सौंदर्य भावना का अभाव और शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दर लय के समान सौंदर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते हैं। इन प्रतीकों का अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ट सम्बंध होता है। प्रत्येक देश के प्रतीकों का अपना समूह होता है जिनके द्वारा देशवासी अपने सुख-दुःख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते हैं।[1] डाक्टर फ्रायड का मत है कि आत्मा की भाषा रूपकों और प्रतीकों के द्वारा ही व्यक्त हो सकती है।[2]

प्रतीकों के भेद दो प्रकार से किये गए हैं। कुछ विचारकों का मत है कि प्रतीकों के दो प्रमुख भेद हैं प्रभावोत्पादक प्रतीक या इमोशनल सिंबल तथा विचारोत्पादक या इंटलेक्चुवल सिंबल। अंडरहिल ने प्रतीकों के तीन वर्गों का उल्लेख किया है, ये इस प्रकार हैं (क) संसार के मायाजाल से मुक्त मानव सत्यान्वेषण करता है, इस दृष्टि से मनुष्य है। (ख) दूसरी अवस्था में आत्मा और परमात्मा के हार्दिक मिलन की अभिलाषा है। (ग) तृतीय वर्ग के अन्तर्गत नैतिक जीवन से सम्बद्ध भावनाएँ आती हैं।

प्रतीकों का प्रयोग इस देश के लिए कोई नवीन बात नही है। निर्गुण ब्रह्म की सूक्ष्म भावना को हृदयंगम कराने के लिए जिन मूर्त रूपों का आश्रय लेना अनिवार्य होता है वे प्रतीक की ही संज्ञा से विभूषित हैं।[3] हमारे वेद, शास्त्र और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर प्रतीकों की स्थापना की गई है। स्वामी विवेकानन्द के मत से प्रतीक वे वस्तुएँ हैं जो किसी-न-किसी अंश तक ब्रह्म के स्थान में उपास्य कहा जा सकती हैं। प्रतीकों का प्रयोग भक्ति-काव्य,

---

१. आधुनिक काव्यधारा, पृ० २१७

२. डा० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३३

३. मय नाम ब्रह्मत्युपास्ते इत्येवमादिषु प्रतीकोपासनेषु संशयः (ब्रह्मसूत्र)

रहस्यवादी कविता, प्रेम एवं प्रकृति-चित्रण विषयक काव्य में अधिक हुआ है। हिन्दी के संत-काव्य या निर्गुण-धारा में प्रतीकों का प्रयोग बाहुल्य के साथ हुआ है। संतों की 'बहुरिया' जीवात्मा का तथा संतों का 'भरतार' परमात्मा का प्रतीक है। संतों ने अपनी अनुभूति को जनसाधारण तक पहुँचाने का माध्यम प्रतीकों को बनाया है।

"माली आवत देखि के कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिए काल्हि हमारी बारि ॥"

प्रस्तुत 'साखी' में कितनी सरल, भाषा-शैली में कबीरदास जी ने जीवन की क्षणभंगुरता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। यहाँ पर 'माली'' ' काल' का प्रतीक है, 'कलियाँ' जीव के लिए प्रयोग में आयी हैं। कबीर की परम्परा में अन्य संतों ने भी सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग किया है।

सूफ़ी-साहित्य में प्रतीकों की सुन्दर व्यंजना हुई है। चन्द्रबली पांडेय जीने लिखा है कि प्रतीक ही सूफ़ी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुभूति के बिना सूफ़ियों के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्त्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज़ हो जाती है।"[१] सूफ़ी कवियों में प्रतीक योजना की दृष्टि से जायसी के अनन्तर विशेष उल्लेखनीय हैं नूर मुहम्मद, शेख रहीम, कासिमशाह तथा उसमान।[२]

अब नाभादास की प्रतीक योजना की ओर ध्यान देना चाहिए। नाभादास की प्रतीक योजना का लक्ष्य है विषय को प्रभावशाली और स्पष्ट बनाना। प्रयुक्त प्रतीकों के माध्यम से हमारे कवि ने अपने हृदय की श्रद्धा भावना को भी साकार बनाने का प्रयत्न किया है। 'भक्तमाल' की प्रतीक योजना बड़ी विस्तृत है। उन्होंने प्रतीकों की रचना करने के लिए चन्द्र, सूर्य, रत्नाकर, कमल, सुरसरि, सेतु, सुधा, जलधर, दीपक, कामधेनु, पादम, चिन्तामणि, कल्पतरु, नौका, पारस आदि प्राकृतिक तत्वों की सहायता ली है। इन सभी के पर्यायों का प्रयोग भी कवि ने प्रचुरता के साथ किया है। इन प्रतीकों की पुनरावृति भी कवि ने बराबर अनेक प्रकार से की है।

'भक्तमाल' में सूर्य को प्रतीक के रूप में दिनकर, दिवाकर, सूर्य, सूरज

---

१. शंकरभाष्य ४।१।५ (स्वामी विवेकानन्द कृत भक्तियोग से उद्धृत)
२. तसव्वुफ अथवा सूफ़ीमत, पृ० ९७
३. डा० सरला शुक्ला : जायसी के परिवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य, पृ० २१३-२६

आदि शब्दों के रूप में प्रायः दस अवसरों पर प्रयोग किया गया है। इनमें से तीन स्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक स्थल पर कवि ने पयहारी कृष्ण-दास के गुणों का गान करते हुए उन्हें "दाहिमा वंश दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियौ" कहा है।[१] श्री दिवाकर को कवि ने "अज्ञान ध्वांत अंतहि करन दुतिय दिवाकर अवतरयौ" कहा है।[२] इसी प्रकार श्री सोती जी को पृथ्वी मंडल के दूसरे दिवाकर रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है।[३] स्वामी अनंत श्री रामानुज जी की प्रशंसा करते हुए नाभादास ने कहा है, "यामुन मुनि रामानुज तिमिर हरन उदय भान।"[४] सूर्य को प्रतीक के रूप में ग्रहण अनेक स्थलों पर किया गया है। ये सभी प्रतीक अज्ञान-तिमिर को नाश करने के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

'सागर' प्रतीक के रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। 'सागर' के प्रायः चार-पाँच पर्यायों का कवि ने अनेक बार उल्लेख किया है। ये पर्याय हैं रत्नाकर[५], सागर[६], सिंधु[७], समुद्र[८] तथा उदधि[९]। 'सागर' का प्रतीक के रूप में कहीं हृदय की गंभीरता के लिए प्रयोग हुआ है और कहीं पर भक्ति की गंभीरता व्यक्त करने के लिए। कवि ने भागवत को भी एक महान् उदधि माना है।

गिरा या वाणी के लिए नाभादास ने दो प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक हैं गंगा[१०] और जलंधर[११]। ज्ञानदेव जी की प्रशंसा करते हुए हमारे कवि ने कहा है "गि रा गंग उनहारि काव्य रचना प्रेमाकर"[१२] तथा श्री कृष्णदास चालक के सम्बंध में कहा है कि, "गिरिराज धरन" की छाप गिराजलधर ज्यों गाजै।"[१३] इन दोनों स्थलों पर ये प्रतीक बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं।

कमल कवि का सर्वप्रिय प्रतीक है। इसके लिए कमल के अन्य पर्याय भी प्रयुक्त हुए हैं यथा पंकज[१४], पद्म[१५], सरसिज[१६], सरोज[१७], कमल[१८]। कमल

---

१. भक्तमाल, पृ० ३०८
२. वही, पृ० ५७४
३. वही, पृ० ८६७
४. वही, पृ० २६७
५. वही, पृ० २०२
६. वही, पृ० २३८, ३४९, ४६८
७. वही, पृ० ३०४, ५९५
८. वही, पृ० ३८४, ५४२
९. वही, पृ० ७४४
१०. वही, पृ० ३८६
११. वही, पृ० ७४९
१२. वही, पृ० ३८६
१३. वही, पृ० ७४९
१४. वही, पृ० १४०
१५. वही, पृ० २०४
१६. वही, पृ० २३७
१७. वही, पृ० ३०८
१८. वही, पृ० ३०८, ४६७, ७८२

के ये पर्याय दो वस्तुओं के लिए प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं प्रथम नेत्रों और द्वितीय चरणों के लिए। ये दोनों ही प्रतीक परम्परा से प्रयोग में आ रहे हैं।

अमृत के पर्याय सुधा और पीयूष का प्रतीक रूप में प्रयोग दो स्थलों पर कवि ने किया है। 'सुधा' का प्रयोग 'भक्तिसुधा' के अर्थ में और पीयूष का प्रयोग 'प्रेम पीयूष' के लिए कवि ने किया है।[१] सुधा का प्रयोग 'भागवत सुधा' के लिए हुआ है।[२]

वृक्षों की उदारता जगत-विदित है। कवि ने उनकी उदारता भक्तों के चरित्र में आरोपित की है। इसलिए भक्त भी प्रतीक बन कर आए हैं। वृक्षों के पर्याय पेड़[३] और पादप[४] का उल्लेख दो स्थलों पर हुआ है। एक स्थान पर कवि ने श्रीरामानुजा को "अवनि कल्पतरु" के रूप में उल्लिखित किया है।[५]

भक्तों के व्यक्तित्व को सम्मानित करने के लिए नाभादास ने उन्हें सेतु[६], मेघ[७], पारस[८], मुकुट[९], कामधेनु[१०], चिन्तामणि[११], दीपक[१२], इन्दु[१३], नौका[१४] आदि के रूप में व्यक्त किया है। वास्तव में उदाराशय भक्तों का चरित्र सर्वगुण सम्पन्न होता है। ये प्रतीक उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक हैं।

नाभादास के कतिपय और प्रतीक बड़े रोचक है यथा अज्ञान कुहर[१५], कीरत धन[१७], नाममहानिधि[१८], संदेह ग्रन्थि[१९], तम भ्रम[२०], पाप तापनि[२१], अज्ञान तिमिर[२२], भक्ति कमान[२३], प्रेमनिधि[२४], साँच सदन तथा संत शिखंडी।

नाभादास की प्रतीक योजना उनके सामान्य ज्ञान और विस्तृत अनुभव की सूचक है।

१. भक्तमाल, पृ० ५४२
२. वही, पृ० ६२७
३. वही, पृ० ७९३
४. वही, पृ० ६४१
५. वही, पृ० ६४१
६. वही, पृ० २६७
७. वही, पृ० २७७ २८८
८. वही, पृ० २६३
९. वही, पृ० ५३३
१०. वही, पृ० ५८७
११. वही, पृ० ८२५
१२. वही, पृ० ७४४
१३. वही, पृ० ७६२
१४. वही, पृ० २६३
१५. वही, पृ० ३०४
१६. वही, पृ० ५३९
१७. वही, पृ० ४७६
१८. वही, पृ० ५७०
१९. वही, पृ० ५६५
२०. वही, पृ० ७३०
२१. वही, पृ० ७३८
२२. वही, पृ० ८४९
२३. वही, पृ० ८४९
२४. वही, पृ० ७४९

दशम परिच्छेद

भक्तमाल की परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तमाल' की रचना एक ऐतिहासिक घटना है। धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान देश होने के कारण भारतवर्ष में भक्तमाल अत्यधिक जनप्रिय और समाज में समादरित ग्रन्थ बन गया। 'भक्तमाल' की जनप्रियता का अनुमान केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि (रामचरित मानस को छोड़कर) जितनी टीकाएँ इस ग्रन्थ की लिखी गई और जितने स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना 'भक्तमाल' के आदर्श पर की गई उतने किसी अन्य ग्रन्थ के आधार पर नहीं। हिन्दी का शायद ही कोई ऐसा पुस्तकालय हो जिसमें भक्तमाल की प्रति न विद्यमान हो। साहित्य और धर्म दोनों ने 'भक्तमाल' का स्वागत समान उत्साह के साथ किया।

'भक्तमाल' की परम्परा में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इनको हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) प्रकाशित भक्तमाल (२) अप्रकाशित भक्तमाल

सबसे पहले हम प्रकाशित भक्तमालों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे।

भक्तनामावली

नाभादास-कृत भक्तमाल की परम्परा में 'भक्तनामावली' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके लेखक सुप्रसिद्ध गोस्वामी हित हरिवंश जी के शिष्य ध्रुवदास जी थे। इस ग्रन्थ की रचना ११४ छंदों में सम्पन्न हुई है। इस ग्रन्थ में १२३ भक्तों के नाम एवं चरित्र का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन हुआ है। कवि ने गोस्वामी हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोविन्द स्वामी, नागरीदास, नन्ददास, मीरां, सूरदास, कबीर, रैदास, रामानन्द तथा छीत स्वामी

का यशोगान बड़े सुन्दर शब्दों में किया है। इन कवियों का चरित्र और यश का वर्णन बहुत संक्षेप में हुआ। उदाहरणार्थ यहाँ पर दो छंद उद्धृत किये जाते हैं। इन छंदों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि का ध्यान न तो काव्य-सौष्ठव पर है, न शब्द-योजना और न छंदों की शुद्धता आदि पर। कवि का ध्यान विशेष रूप से भक्तों के उल्लेख पर ही केन्द्रित है। एक ही छंद में चार-चार, छह-छह भक्तों का वर्णन कर दिया गया है :

१. **गोविंद स्वामी गंग अरु विष्णु बिचित्र बनाइ।**
पिय प्यारी को जस कह्यौ राग रंग सो गाइ॥[1]

२. **विहारिदास, दंपति, जुगल, माधौ, परमानन्द।**
वृन्दावन नीके रहे काटि जगत को फन्द॥[2]

इस ग्रन्थ का रचना-काल निश्चित नहीं है। इसके संपादक बाबू राधाकृष्ण दास थे। इसका प्रथम बार मुद्रण इंडियन प्रेस प्रयाग से सन् १९२८ ई० में हुआ था।

भक्तमाला

नाभादास-कृत 'भक्तमाल' की परम्परा में महाराज रघुराज सिंह जू देव रचित 'भक्तमाला' सर्वाधिक जनप्रिय और महत्त्वपूर्ण रचना है। महाराज रघुराज सिंह का परिचय साहित्य-प्रेमियों को विदित ही है। वे रीवाँ के नरेश थे। इस ग्रन्थ में २९४ भक्तों के चरित्र वर्णित हुए हैं। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि कवि की दृष्टि उन कवियों पर भी गई है जिन्हें भक्तमाल में स्थान नहीं मिला था। इन कवियों में उल्लेखनीय हैं मुकुन्दाचार्य, उर्मिलादास, कंगाल दास, मलूकदास, श्यामदास, चरणदास, मंगलदास, रामदास, अनंतदास, तृतीय रामदास, रामसेवक, श्रीकृष्णदास, गोपीचरण, तुलाराम, चतुर दास, हिम्मतिदास, पर्वतदास, भगवान-दास, कृष्णदास, रामसखे। इनके अतिरिक्त परम्परागत चरित्रों की ओर भी लेखक ने सविस्तार विचार किया है। इस दृष्टि से कवि ने तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। ग्रन्थ की रचना दोहा, चौपाई छंदों में हुई है। कुछ चरित्रों का वर्णन कवि ने बहुत विस्तार के साथ किया है उदाहरणार्थ सुरथ सुधन्वा का चरित्र १६ पृष्ठों में व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार प्रसिद्ध भक्त जयदेव का वर्णन

---

१. भक्तनामावली, पृ० ४ २. वही, पृ० ७

१६ पृष्ठों में सम्पन्न हुआ है। पीपा जैसे भक्तों का चरित्र भी लगभग १८ पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। भाषा तथा शैली सरल और रोचक है। उदाहरणार्थ यहाँ तुलसीदास के चरित्र से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

राजापुर यमुना के तीरा। तुलसी तहां बसै मतिधीरा॥
पंडित सकल शास्त्र विज्ञाता। विद्या में विश्वास अघाता॥
भो विवाह आई जब नारी। तासो अतिशय नेह पसारी॥
आयो तियहिं लिवावन भाई। करी न तुलसी तियहिं बिदाई॥
नैहर हित बिरिया बिरझानी। तदपि न कह्यौ तासु कछु मानी॥[1]

ग्रन्थ का रचनाकाल निम्नलिखित है :

उनइस सैं यक विंशती, संवत आश्विनि मास।
शुक्ल सप्तमी बार गुरु, कीन्हो विमल प्रकाश॥

ग्रन्थ की रचना १०७९ पृष्ठों में हुई है। इसका प्रकाशन चतुर्थ बार श्री वेंकटेश्वर प्रेस से संवत् १९७१ में हुआ था।

भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका

भक्तमाल की परम्परा में लिखित और प्रकाशित 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' अपनी कोटि की महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता मुरादाबाद के दीनदारपुरा निवासी पं० ज्वाला प्रसाद जी मिश्र है। ग्रन्थ की भूमिका में लेखक ने कहा है कि "यही विचार कर नाभा जी ने पुराणों से और उस समय तक के और भक्तों के चरित्रों से एक भक्तमाल नामक ग्रन्थ निर्माण किया जिसका कई भाँति से विस्तार हो गया है।... परन्तु हाँ यह बात है कि मनुष्यों को भक्ति उत्पन्न करने के लिए यही बहुत है। इस कारण इस समय की प्रचलित भक्तमाल का भी प्रचार सर्वसाधारण के लिए बहुत उपयोगी है।" इस ग्रन्थ में २०७ भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। इस ग्रन्थ की रचना गद्य में हुई है। गद्य का एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाता है :

"नन्ददास जी चन्द्रहास्य के पुत्र ब्राह्मण वर्ग रामपुर के वासी भगवान के भक्त और प्रेमी थे भजन और स्मरण के सिवाय कुछ प्रयोजन उनको न था, उनके बनाये हुए ग्रन्थ बहुत हैं।... उनकी कविता में कवीश्वरों के यह वचन हैं कि

---

१. भक्तमाला, पृ० ७८२-८३

"और सब घड़िया नन्ददास जड़िया" अर्थात् जड़ाऊ ऐसे मनोहर वृतान्त लिखे है कि निश्चय करके भगवान् के प्रेम से उनका मन उमड़ता है।"[१]

इस ग्रन्थ में विशेष रूप से स्वामी रामानन्द की कथा, बल्लभाचार्य की कथा, हित हरिवंश की कथा, नन्ददास की कथा, तुलसीदास की कथा, सूरदास की कथा, परमानन्द जी की कथा, रैदास की कथा वर्णित हुई है।

'भक्तमाल हरि भक्त प्रकाशिका' की सामग्री का प्रसार ७६५ पृष्ठों में हुआ है। इसका प्रकाशन संवत् १९८१ में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से हुआ था।

उत्तरार्ध भक्तमाल

श्रीनाभादास की परम्परा में लिखित समस्त भक्तमालों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र-कृत 'उत्तरार्ध भक्तमाल' का विशेष महत्व है। इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसकी रचना एक ऐसे व्यक्ति (भारतेन्दु जी) द्वारा सम्पन्न हुई जो साहित्यिक जगत में युगप्रवर्तक व्यक्तित्व का अधिकारी है और भक्तों के जगत में भी वह परम वैष्णव माना जाता है। भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व साहित्य, धर्म, राजनीति, भाषा आन्दोलन तथा 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' के आन्दोलनों में विशेष महत्व रखता है।

भारतेन्दु लिखित प्रस्तुत भक्तमाल की रचना प्रायः २१० छंदों में सम्पन्न हुई है। भारतेन्दु जी ने इस ग्रन्थ के उपक्रम में लिखा है :

"नाभा जी महाराज ने भक्तमाल रस जाल।
आलबाल हरि प्रेम की बिरची होइ दयाल॥
ता पाछे अब लौं भए जे हरि पद रत संत।
तिनके जस बरनन करत सोइ हरि कहं अति कंत॥
कबहूँ कबहुँ प्रसंग बस फिर सों प्रेमी नाम।
ऐहैं या नव ग्रन्थ में पूरब कथित ललाम॥
भक्तमाल जो ग्रन्थ हैं नाभा रचित विचित्र।
ताहिं को एहि जानियों उत्तर भाग पवित्र॥
भक्तमाल उत्तर अरध याही सों सुभ नाम।
गुथी प्रेम की डोर में संत रतन अभिराम॥[२]

---

१. भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका, पृ० २२३-२४

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, प्रथम संस्करण, पृ० २२६

इस उद्धरण की अन्तिम चार पंक्तियों में लेखक ने 'भक्तमाल' की रचना के कारण और प्रेरणा के आधार का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ में वर्ण्य-विषय के साथ ही साथ लेखक ने भाषा पर भी विशेष ध्यान दिया है। इसकी साहित्यिक ब्रजभाषा है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

श्री तुलसिदास परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे।
नन्ददास अग्रज द्विज-कुल मति गुन-गन मंडित।
कवि हरिजस गायक प्रेमी परमारथ पंडित॥
रामायन रचि राम भक्ति जग थिर करि राखी।
थोरे में बहु कह्यौ जगत सब याको साखी॥
जग लीन दीनहूँ जा कृपा बल न राम चरिताहो तजे।
श्री तुलसिदास परताप तें नीच ऊंच सब हरि भजे॥[1]

'भक्तमाल' का रचनाकाल कविवर भारतेन्दु के शब्दों में ही निम्नलिखित है :

उनइस सै तैंतीस वर, संवत भादों मास।
पूनो सुभ ससि दिन कियो भक्त चरित्र प्रकास॥

इस ग्रन्थ की रचना दोहा और छप्पय छंदों में हुई है।

'भक्तमाल की परम्परा में अनेक ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई जिनके लेखकों ने नाभादास के महत्वपूर्ण ग्रन्थ के नाम को ही अपना लिया है। इस परम्परा में श्री प्रताप सिंह लिखित 'भक्तमाल' भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ की रचना २६ शीर्षकों में हुई है। इनमें से प्रथम और अंतिम परिच्छेदों में क्रमशः मंगलाचरण एवं भगवत् की महिमा तथा 'अन्य वृतान्त प्रयोजनीय' वर्णित हुआ है और शेष २४ परिच्छेदों में २४ निष्ठाओं के अन्तर्गत २५८ भक्तों का चरित्र वर्णित हुआ है। इस ग्रन्थ में वर्णित भक्तों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं रामानन्द, हितहरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, सूरदास, रसखान, कबीर, ज्ञानदेव, पीपा, रैदास, मीरांबाई, अग्रदास तथा चतुर्भुज दास। इस ग्रन्थ की रचना गद्य में हुई। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

"कबीर जी काशी में भगवद्भक्त ऐसे हुए कि जिनकी भक्ति और प्रताप जगत् में विख्यात है जिन्होंने भगवद्भक्ति से व्यतिरिक्त कर्म को अधर्म जाना अर्थात् योग, दान व व्रत इत्यादि बिना भगवद्भजन व भाव के वृथा समझा

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, पृ० २६१

और निश्चय करके शास्त्रों का भी यह ही अभिप्राय व सिद्धान्त है कि और साधन शून्य के सदृश है और कृष्णनाम अंक के सदृश है।"[1]

इस ग्रन्थ के सम्पादक आगरा निवासी पं० कालीचरण हैं। इसका प्रकाशन लखनऊ के प्रसिद्ध नवल किशोर प्रेस से हुआ है। सन् १९२२ ई० में इसका दशम संस्करण प्रकाशित हुआ।

अप्रकाशित भक्तमालों की सूची

अप्रकाशित भक्तमालों या भक्तमाल की परम्परा में लिखित अन्य ग्रन्थ अनेक संग्रहालयों अथवा पुस्तकालयों में उपलब्ध हुए हैं। इन संग्रहालयों की सूची निम्नलिखित है :

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२. सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर।
३. श्री अगरचन्द नहटा का निजी संग्रहालय।
४. श्री गणेशदत्त मिश्र (दिल्ली) का व्यक्तिगत संग्रहालय।
५. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का संग्रह।
६. विविध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में प्राप्त 'भक्तमाल' एवं भक्तमाल की परम्परा में लिखित ग्रन्थों की सूची निम्नांकित है :

	ग्रन्थ	*ग्रन्थकार*	*स्थिति*	*लिपिकाल*	*विशेष*
१.	भक्तमाल सटीक	नाभादास	पूर्ण	१९२१ वि०	प्रियादास की टीका पर हुलास दास की उपटीका।
२.	,,	,,	अपूर्ण		
३.	,,	,,	पूर्ण		
४.	,,	,,	पूर्ण		
५.	,,	,,	अपूर्ण		
६.	,,	,,	अपूर्ण		
७.	,,	,,	अपूर्ण		
८.	,,	,,	अपूर्ण		
९.	भक्तमाल रसबोधिनी	अग्रनारायण	अपूर्ण	१८३३ वि०	प्रियादास की टीका पर वैष्णवदास की उपटीका।

---

१. श्री प्रताप सिंह : भक्तमाल, पृ० २२०-२१

सरस्वती भंडार; उदयपुर

१. नाभादास कृत भक्तमाल, टीकाकार प्रियादास, पूर्ण
२. नाभादास कृत भक्तमाल, बालक राम की विस्तृत टीका, पूर्ण

दादू महाविद्यालय, मोती डूगरी, जयपुर

१. नाभादास कृत भक्तमाल, पूर्ण
२. नाभादास कृत भक्तमाल, टीकाकार प्रियादास, पूर्ण
३. भक्तमाल दादू पंथी संतों की

विश्वेश्वरानन्द संस्थान साधु आश्रम, होशियारपुर

१. भक्तमाल, पृष्ठ संख्या १९१, रचनाकाल १८४४, लेखक चरणदासी सम्प्रदाय के संत नित्यानन्द
२. भक्तमाल, नाभादास कृत प्रियादास की टीका सहित।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में उपलब्ध सामग्री

१. भक्तविरुदावली. . .फर्स्ट टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास, १९०६, १९०७, १९०८, पृ० २८७
२. भक्तमाला माहात्म्य फर्स्ट टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास, १९०६, १९०७, १९०८, पृ० २४७
३. भक्तमंजरी. . .ले० दीनानाथ, सेकेंड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रबंधु, १९०१—१९१४, पृ० २२
४. भक्तमाला, ले० चरनदास, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रबंधु, १९०१—१९१४, पृ० ५२
५. भक्तमाल की टिप्पणी, ले० जमाल, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रबंधु, १९०१—१९१४, पृ० ११३
६. भक्तमाल माहात्म्य, ले० पुरुषोत्तम, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रबंधु, १९०१—१९१४, पृ० १६९
७. भक्तनामावली, ले० ध्रुवदास संवत् १६८१, प्राप्ति स्थान भारतेन्दु जी का संग्रहालय, सर्चकार हिंदी मैनुस्क्रिप्टस, डा० दास, पृ० २५
८. भक्तरसमाला, लेखक ब्रजजीवनदास-कृत, नि० का० स० १९१४। लिपिकाल सं० १९१४ नाभाजी की टीका।

हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृ० १४

रायल एशियाटिक आफ बंगाल की सामग्री

१. भक्तमाल-प्रसंग—ले० वैष्णवदास । प्रतिलिपिकाल १८२९

महन्त हनुमान प्रसाद, मलूकदासी सम्प्रदाय की गद्दी की सामग्री

१. भक्त बच्छावली, ले० मलूकदास, पृ० १०

२. भक्तचरितावली, ले० सथुरादास, पृ० १९

श्री गणेशदत्त मिश्र (दिल्ली) का संग्रह

१. भक्तचरनामृत, ले० सुंदर संत

२. पद प्रसंग माला, ले० राजा नागरीदास

डा० रामकुमार वर्मा का संग्रह

संतमाल, ले० चन्ददास, संत कवि

श्री अगरचन्द नाहटा का संग्रह

१. भक्तमाल नाभादास, टीका प्रियादास

२. „ „ „ „

इस प्रकार भक्तमाल की परम्परा बड़ी विशाल, बड़ी महान और बड़ी व्यापक है । इसी परम्परा में आज की प्रसिद्ध पत्रिका 'कल्याण' के निम्नलिखित अंक भी ग्रहण किए जा सकते हैं :

१. कल्याण का संतांक

२. कल्याण का संतवाणी अंक

३. कल्याण का योगांक

'भक्तमाल' की परम्परा का, इसी प्रकार अनन्तकाल तक जीवित रहना परमावश्यक है। यह परम्परा हमारे हृदय में भक्ति, शील, विश्व-बन्धुत्व एवं औदार्य जैसे गुणों को जन्म देती रहेगी और हम अच्छे नागरिक बनने के वातावरण में जीवन को उच्च और उदात्त बनाते रहेंगे ।

उपसंहार

'भक्तमाल' हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका महत्त्व दो दृष्टियों से अंकित किया जा सकता है। 'भक्तमाल' हिन्दी-जीवनी साहित्य की विकास यात्रा का महत्त्वपूर्ण सीमा-स्तम्भ (माइल स्टोन) है। इससे पूर्व इस दिशा में इस प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। 'भक्तमाल' ने हमारे समक्ष २०० ऐसे कवियों और भक्तों का चरित्र लिखित रूप में उपस्थित किया जो कभी भी मानव विस्मृति के अंधकार-पूर्ण गर्त में पड़कर विलीन हो सकते थे। 'भक्तमाल' ने उन्हें स्थायित्व प्रदान किया और कीर्ति और यश के द्वारा चिरंजीवी बनाया। इतना ही नहीं,'भक्तमाल' के द्वारा भारतवर्ष कीर प्राचीन गौरवपूर्ण संस्कृति और संस्कृति के आलोक स्तम्भ भक्तों का चरित्र अक्षुण्ण और विस्मरणीय बना दिया गया। इतना ही नही भक्तमाल का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि इस ग्रन्थ रत्न ने भारतीय जनता के समक्ष उज्वल और उदात्त चरित्रों को व्यक्त करके सत्य, दया, विश्व-बंधुत्व के उन आदर्शों का प्रसार किया जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति आदर्श नागरिक बन सकता है। 'भक्तमाल' का प्रभाव बड़ा व्यापक और गहरा रहा। प्रमाण के रूप में एक ही तर्क को उपस्थित करके हम संतोष कर सकते हैं। 'भक्तमाल' की परम्परा में जितने भक्तमालों की रचना हुई और जितनी टीकाएँ हुईं उतनी 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त अन्य किसी रचना की नहीं हुई। 'भक्तमाल' का यह असाधारण महत्त्व है। इस दृष्टि से 'भक्तमाल' का महत्त्व कभी भी क्षीण नहीं होगा। इस प्रकार 'भक्तमाल' का महत्त्व साहित्यिक और धार्मिक दृष्टियों से बड़ा महान है।

'भक्तमाल' सैकड़ों वर्षो से भारतीय जनता को कल्याण-पथ पर अग्रसर करता आ रहा है और आगे भी करता रहेगा। इसमें ऐसे ऐसों चरित्रों का वर्णन है जो विरोधी परिस्थितियों में साधना-पथ पर बढ़ते हुए मुक्ति के भागी हुए। इसमें ऐसे चरित्रों की अभिव्यक्ति है जो पहले अपनी निम्न प्रवृत्तियों के कारण काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ के दास थे, परन्तु सचेत हो जाने के बाद साधना के द्वारा

देवत्व को प्राप्त करने में सफल हुए। इसमें ऐसे भी चरित्रों का वर्णन है जो जीवन-पर्यन्त निम्न प्रवृत्तियों में लगे रहे पर केवल एक बार सच्चे हृदय से ब्रह्म का स्मरण करने के कारण मुक्ति के अधिकारी हो गए। ये सब चरित्र हममें उदात्त भावनाओं का सृजन करने में सर्वथा समर्थ हैं। 'भक्तमाल' का अध्ययन इस दृष्टि से और भी अधिक उपयोगी और आवश्यक है।

आज जब मानव मानवता के गुणों को तिलांजलि देकर निम्नगामी दुर्वृत्तियों में लगा हुआ है, जब मनुष्य प्रतिकार, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध की होली में दग्ध होकर दानव बन जाने में ही अपना कल्याण समझता है, जब अविश्वास और भेद-भावना की भित्तियाँ इतनी स्थूल होती जाती हैं कि मानव को मानव देख और समझ सकने में समर्थ नही रह गया है, ऐसे समय में भक्तमाल हमें उचित पथ पर अग्रसर कर सकेगा।

परिशिष्ट [क]

भक्तमाल के सम्बंध में कतिपय ज्ञातव्य तथ्य

१. भक्तमाल की रचना छन्दों में हुई है ।

२. भक्तमाल की रचना के लिए केवल छप्पय, कुंडलियाँ और दोहों को ग्रहण किया गया है ।

३. भक्तमाल में प्रमुख रूप से अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।

४. नाभादास ने सबसे पहले गोविन्ददास को भक्तमाल पढ़ाया था ।[1]

५. भक्तमाल की रचना अयोध्या, प्रयाग आदि पुण्य-स्थानों में हुई थी ।

६. भक्तमाल की रचना नाभादास ने अपने गुरु स्वामी अग्रदास की आज्ञा एवं प्रेरणा से की थी ।

७. भक्तमाल में सगुण एवं निर्गुण भक्तों के चरित्र का वर्णन समान रूप से श्रद्धापूर्ण शब्दों में किया गया है ।

८. भक्तमाल की परम्परा में लगभग २०० भक्तमालों की रचना की गई ।

---

१. सम्पादक श्री राधाकृष्ण दास : ध्रुवदास-कृत 'भक्तनामावली' पृ० ७२

परिशिष्ट [ख]

चौबीस निष्ठाओं में विभक्त २६९ भक्तों की नामावली

(१) अर्चा प्रतिमा निष्ठा १७ भक्त

१. अल्हजी (साल वृक्ष)
२. अल्हजी कील्हजी
३. कर्मानन्द जी
४. कील्ह जी अल्हजी
५. चन्द्रहास जी
६. जगन्नाथ थानेश्वरीजी
७. देवा पंडाजी
८. धनाजी
९. नामदेवजी
१०. पृथ्वीराज जी हरिमन्दिर
११. रामदासजी एकादशी डाकोर
१२. सदनजी सदना
१३. संतदास प्रबोधवंश
१४. स्वामी गोपाल जी
१५. सिलपिल्ले की भक्ता
१६. सिलपिल्ले की भक्ता सुता जमींदार की
१७. सीवाँ जी

(२) अहिंसा दया, ६ भक्त

१. केवलरामजी (बैल की साटी)
२. भुवन चौहानजी
३. मयूरध्वजजी ताम्रध्वज
४. रांगाजी (कुम्हार)
५. शिवि रांजा
६. हरिव्यासजी देवी से पूज्य

(३) आत्मनिवेदन, शरणागति, १२ भक्त

१. अक्रूरजी
२. गजजी
३. ग्राह
४. जटायूजी महाराज
५. जगन्नाथ
६. ध्रुवजी महाराज
७. विभीषणजी महाराज
८. विन्ध्यावलीजी
९. भानजा मांमू
१०. मांमू भानजा
११. लक्ष्मण भट्ट
१२. राघवानन्द स्वामी

(४) उपवास व्रत, २ भक्त

१. अम्बरीषजी महाराज
२. रुकमांगदजी

(५) कर्मधर्म निष्ठा, ७ भक्त

१. दशरथजी चक्रवर्ती
२. दधीचिजी
३. बलिजी
४. भीष्मजी
५. सुधन्वाजी सुरथजी
६. सुरथजी सुधन्वाजी
७. हरिश्चन्द्रजी महाराज

(६) कीर्त्तन निष्ठा, १६ भक्त

१. कमलाकर भट्टजी
२. कृष्णदासजी चालक
३. गंगलजी वर्द्धमानजी
४. चतुर्भुज मुर्लीधर
५. जयदेवजी महाराज
६. तुलसीदास गोस्वामीजी भक्तमालसुमेर सचित्र
७. नन्ददास जी
८. नारायण मिश्रजी
९. परमानन्दजी सारंग
१०. वर्द्धमानजी गंगलजी
११. वालमीक महर्षिजी
१२. भट्टजी
१३. मथुरादास जी
१४. शुकदेवजी परमहंस
१५. सुखानन्दजी
१६. सूरदासजी

(७) गुरु निष्ठा, १२ भक्त

१. खोजीजी
२. गजपति रुद्रप्रतापजी
३. गुरुनिष्ठ शिष्य
४. घाटमजी
५. चतुर स्वामी (स्त्री भेंट)
६. जीवाजी तत्वाजी
७. तत्वाजी जीवाजी
८. नरवाहनजी
९. पादपद्मजी
१०. पृथ्वीराज कछवाहा
११. राघोदासजी दूबले रुद्रप्रताप जी गजपति
१२. विष्णुपुरीजी

(८) दास्यनिष्ठा, १६ भक्त

१. अंगदजी
२. कल्यानसिंहजी
३. केशव लटेराजी
४. खेम गुलाई
५. खेमाल राजा
६. गोपालभट्टजी गुसाईं

७. दिवाकर भोलारामजी
८. पीपाजी
९. प्रह्लाद भक्तराजजी
१०. प्रयागदासजी
११. भगवान भक्तजी
१२. रामरायसारस्वतविप्र
१३. रैदासजी महाराज
१४. रंगजी
१५. सोतीजी
१६. हठीनारायणजी १६७८ संवतु

(९) धर्म प्रचारक २१ भक्त

१. अगस्त्यजी
२. कृष्णदासजी पयहारी
३. कृष्णचैतन्य नित्यानन्द
४. गोविन्ददासजी भक्तमाली
५. चतुर्भुजजी
६. नारायणभट्ट जी
७. नित्यानन्दकृष्ण चैतन्य
८. निम्बार्क स्वामीजी
९. पयहारी कृष्णदासजी
१०. बल्लभाचार्यजी
११. विष्णुस्वामी
१२. ब्रह्माजी जगत्पिता
१३. माधवाचार्य्यजी
१४. श्रीरामानन्दस्वामी
१५. रामानुजस्वामी
१६. रूपजीसनातनजी
१७. शिवजीआशुतोष
१८. शंकराचार्य्यजी
१९. सनातनजी रूपजी
२०. सोभूरामजी
२१. हरिव्यासदेव
२२. हितहरिवंशजी

(१०) धामनिष्ठा ८ भक्त

१. काकभुशुंडिजी
२. काश्येश्वरजी
३. प्रबोधानन्द सरस्वती
४. भगवन्तदीवानमाधवसुत
५. भूगर्भ गुसाईं
६. मधुगुसाईं
७. लालमतिदेवीजी
८. हरिदासजी तोलनेवाले (बनिक)
०. भुशुंडीजी काक

(११) नाम ७ भक्त

१. अजामेलजी
२. अन्तरनिष्ठ राजा
३. अन्तरनिष्ठ की रानी
४. कबीरजी साहिब
५. पद्मनाभजी
६. ब्राह्मण एक
७. ब्राह्मणी

(१२) प्रेम १७ भक्त

१. अम्बरीषजी और उनकी रानी
२. कात्यायनी देवीजी

३. कृष्णदासजी नूपुरप्राप्त
४. कृष्णदासजी ब्रह्मचारी
५. गदाधर भट्ट
६. जसोधरस्वामीजी दिवदास वंशी
७. नारायणदासजी नृतक
८. विट्ठलदासजी चौबे
९. बिदुरजी
१०. बिदुरानी देवीजी
११. भक्तदास कुलशेखर
१२. माधोदासजी (गढ़ागढ़)
१३. मुरारिदासजी (विलोंदा)
१४. रतिवन्तीजी देवी
१५. लीलानुकर्ण (नीलाचल)
१६. सवरीजी महारानी
१७. सुतीक्षणजी प्रेमसिन्धु

(१३) भेष ८ भक्त

१. गिरिधरग्वाल (तीर्थ)
२. चतुर्भुजराजा (करौली)
३. भगवानदासजी (मथुरा)
४. मधुकरसाहजी (ओड़छा)
५. रसखानजी मालाधारी
६. राजा (भांड़संतसनमान)
७. लालाचार्य्यजी (जामातवर्वरमुनि)
८. हंस पक्षी

(१४) महाप्रसाद ४ भक्त

१. अंगदसिंहजी (कलियुग)
२. पुरुषोत्तमपुरी के राजा
३. श्वेतद्वीप भक्त (खग) जी सप्तद्वीप के भक्त
४. सुरसुरानन्द स्वामी श्रीसुरसुरी जी

(१५) माधुर्य्य शृंगार २० भक्त

१. अग्रदेव स्वामीजी
२. कर्मैतीदेवीजी
३. कन्हरदासजी (वोड़िये)
४. कल्यानजी धर्मदाससुत
५. कील्हजी स्वामी
६. कृष्णदासजी पंडित
७. केशवभट्ट काश्मीरी
८. गुहनिषादजी प्रेमी
९. गोपाल भट्टजी
१०. गोपिका वृन्द श्रीव्रजकी
११. जसवन्तजी
१२. नरसीमेहताजी
१३. बनवारी रसिक रंगीले
१४. बिल्वमंगलजी
१५. मानदासजी
१६. मीरांबाईजी देवी
१७. रत्नावली देवीजी
१८. लोकनाथजी गोसाईं
१९. सूरदास मदनमोहन
२०. हरिदासजी रसिक

(१६) लीला मूर्ति में निष्ठा ६ भक्त

१. अली भगवानजी
२. खड्गसेनजी कायस्थ

३. नाथ भट्टजी फनिवंशी
४. बल्लभजी (नारायण भट्ट के)
५. बिपुल बिट्ठलजी
६. रामरैनजी (खैमाली)

(१७) वात्सल्य १० भक्त

१. कर्मा बाई जी
२. कृष्णदासजी बिट्ठलेशसुत
३. कौशल्या बड़ी अम्बाजी (सतरूपाजी)
४. गुंजा (माली) जी
५. गिरिधर बिट्ठलेशसुत
६. गोकुलनाथजी गोसाईं
७. जसोदामाताजी
८. नन्दजी महाशय
९. बिट्ठलनाथ गुसाईं
१०. त्रिपुरदास कायस्थ

(१८) वैराग्य सान्ती १४ भक्त

१. कामध्वजजी
२. गदाधरजी विहारीलालजी
३. जीव गुसाईजी
४. द्वारिकादास योगीश
५. नारायणजी अल्हवंशी
६. परशुराम जी
७. बाँकाजी राँकाजी
८. माधोदासजी जगन्नाथीय
९. रघुनाथ गुसाईं गरुड़
१०. रन्तिदेवजी
११. रांकाजी बांकाजी
१२. श्रीधर स्वामीजी
१३. सुरसुरीजी महरानी
१४. हरिवंश निष्किंचनजी

(१९) श्रवणनिष्ठा ४ भक्त

१. गरुड़जी खगेश
२. नारदजी देवर्षि
३. परीक्षितजी राजा
४. लालदासजी

(२०) सख्यनिष्ठा ५ भक्त

१. अर्जुनजी पांडव
२. गोविंद श्री बिट्ठलशिष्य
३. गंगग्वालजी
४. गोपसहचर ग्वालवृन्द श्रीव्रजके
५. सुदामाजी

(२१) सत्संग साधुसेवा २० भक्त

१. कान्हर श्री बिट्ठलसुत
२. केवलकूबा
३. गनेशदेई रानी
४. गोपालीजी देवी
५. गोपाल बाँबीली
६. ग्वालजी भैंसवाले भक्त
७. जस्सू स्वामी
८. तिलोकजी सोनार
९. तिलोचनदेव
१०. नन्दब्राह्मण वैष्णसेवी

११. नीमाजी
१२. विष्णुदासा काशीर
१३. दो बाई सुत विष देनी
१४. बारमुखी
१५. (जयतारन) बिदुर पेतीवाले
१६. मनसुखदास स्रीनाथ
१७. माधव ग्वाल
१८. रामदास
१९. रसिक मुरारिजी
२०. रानीजी सुत विष देनी
२१. राजा उस रानी का
२२. राजा उस बाई का
२३. राजान बाई रामरैन
२४. लाखाजी
२५. सदाव्रती साहूकार महाजन
२६. संतभक्त चूल्हे वाले
२७. सेनजी
२८. हठीले हरिराम
२९. हरिपाल ब्राह्मण निष्किंचन

(२२) सेवानिष्ठा १० भक्त

१. आसकरन
२. कुमार किशोरसिंह
३. जगतसिंह नृपमणि
४. जयमलजी
५. नरहरियानन्द
६. प्रेमनिधिजी
७. विष्वक्सेनजी
८. लक्ष्मीदेवीजी
९. शेषजी जगदाधार
१०. हनुमानजी श्रीरामदूत

(२३) सौहार्दनिष्ठा ५ भक्त

१. कुन्ती देवीजी
२. जनकजी राजर्षि मिथिलेश सीरध्वज
३. युधिष्ठिरजी पांडव
४. द्रौपदीजी महारानी
५. वृषभानुजी पुण्यपुंज

(२४) ज्ञानी १३ भक्त

१. अलर्कजी
२. ऊधवजी
३. कान्हर समदृष्टि
४. नारायण बदरिकाश्रम
५. पूरनजोगी बिराटी
६. वशिष्ठजी गुरुवर्य्य
७. बहुलाश्वराजा (मिथिला)
८. बाल्मीक (द्वापर युग)
९. विश्वामित्रजी
१०. जड़भरतराजा (भरतखंड)
११. लड्डूस्वामी
१२. श्रुतिदेवविप्र (मिथिला)
१३. ज्ञानदेवजी

परिशिष्ट [ग]

प्रियादासजी का परिचय

प्रियादास 'भक्तमाल' के सर्वप्रथम टीकाकार थे। परन्तु खेद है कि हिन्दी के इतिहासकारों और साम्प्रदायिक लेखकों की दृष्टि उनकी ओर नहीं गई है। प्रियादास की जीवनी, नाभादास की जीवनी के सदृश ही हमारी उत्सुकता और रहस्य की सामग्री बन गई है। प्रियादास जी के सम्बंध में हमें दो सूत्रों से किंचित् सूचना प्राप्त हो जाती है। इनमें से प्रथम सूत्र है अंतःसाक्ष्य तथा द्वितीय है बहिर्साक्ष्य। बहिर्साक्ष्य में उल्लेखनीय है महाराज रघुराज सिंह कृत 'भक्तमाला'। अब हम इन दोनों सूत्रों का परीक्षण करते हुए प्रियादास का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

'भक्तमाल' की टीका समाप्त करने के अनन्तर प्रियादास ने अपनी विनयशीलता और नम्रता का वर्णन करते हुए कहा है :

"रसिकाई कबिताई जीन्ही दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाव हैं।
उर रंगभवन में राधिका खन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं॥
रसिक समाज में बिराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जनमन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूं को मन हरि लीनों ताते राय हैं॥
इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है।
गोबर्द्धननाथ जू कें हाथ मन परयो जाको वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है।
मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावै हिय आई है॥
घट बढ़ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मनि में सुनाई है।"[1]

तथा

"नाभाजू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति बिस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रग हियो लीजै संतनि लड़ाइकै॥

---

१. भक्तमाल, पृ० ९३९-४०

संबत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन की मास बदी सप्तमी बिताइकै ।
नारायणदास सुखरास भक्तमाल लै कै प्रियदास दास उर बसौ रहौ छाइकै ॥"[1]

उद्धृत उद्धरणों में से प्रथम की छठी और सातवीं पंक्तियाँ तथा द्वितीय की तीसरी पंक्ति विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । कवि ने इन पंक्तियों में कहा है कि "इन्हीं मनोहर राय के दासों के दास (मैं प्रियादास) ने इसकी टीका विक्रमी संवत् १७६९ के फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को पूर्ण की ।" स्पष्ट है कि इन पंक्तियों और उल्लेखों से प्रियादास की नम्रता और विनयशीलता के अतिरिक्त जीवनी या व्यक्तित्व के सम्बंध में कोई सूचना नहीं मिलती है ।

महाराज रघुराज सिंह ने 'भक्तमाला' में प्रियादास का चरित्र ५० पंक्तियों में वर्णन किया है । परन्तु यह चरित्र प्रमुख रूप से चमत्कार-बोधक है । इस चरित्र की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं :

"अब बरणौ प्रियदास चरित्रा । भक्तमाल किय तिलक बिचित्रा ॥
प्रियादास यक संत प्रधाना । शिष्य मनोहरदास सुजाना ॥"[2]

इतना उल्लेख करने के अनन्तर लेखक ने 'भक्तमाल' और उसके टीकाकार प्रियादास के अद्भुत और चमत्कारी प्रभाव का वर्णन सविस्तार किया है ।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[4], आचार्य मिश्रबंधु[5], हरिऔध जी[6] श्रीपरशुराम चतुर्वेदी तथा डा० रामकुमार वर्मा[7] आदि विद्वानों ने प्रियादास का उल्लेख टीकाकार के रूप में किया है, किन्तु इन्होंने कोई विशेष सूचना नहीं दी है ।[8]

---

१. भक्तमाल, पृ० ९४१
२. भक्तमाला, पृ० ६३४
३. भक्तमाला, पृ० ६३४-३५
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
५. विनोद, पृ० ३५८
६. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३५
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६८०
८. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ० ९६ आदि

परिशिष्ट [घ]

सहायक पुस्तकें

(क) इतिहास

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास
३. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
४. मिश्रबन्धु-विनोद, मिश्रबन्धु
५. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, हरिऔध
६. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा
७. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, डा० रामकुमार वर्मा
८. सरोज, शिवसिंह सेंगर
९. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह
१०. उर्दू साहित्य का इतिहास, डा० सरला शुक्ल
११. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, गुलाबराय
१२. हिन्दी रीति-साहित्य, डा० भगीरथ मिश्र
१३. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र
१४. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी

(ख) साहित्य समालोचना

१. साहित्यालोचन, डा० श्यामसुन्दर दास
२. सिद्धान्त और अध्ययन, श्री गुलाब राय
३. साहित्य समालोचना, डा० रामकुमार वर्मा
४. साहित्य समीक्षा, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(ग) भाषा-विज्ञान

१. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. सामान्य भाषा-विज्ञान, डा० बाबूराम सक्सेना

३. तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, डा० मंगलदेव शास्त्री
४. अवधी भाषा और उसका साहित्य, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(घ) थीसिस

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त
२. निर्गुण काव्य-धारा, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३. आधुनिक काव्य-धारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल
४. जायसी के परिवर्ती सूफी कवि, डा० सरला शुक्ल
५. आचार्य केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित
६. आचार्य भिखारीदास, डा० नारायण दास खन्ना
७. सुन्दर-दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(ङ) देश के इतिहास

१. भारतवर्ष का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद
२. राजस्थान का इतिहास, कर्नल टॉड
३. आइन-ए-अकबरी
४. तुजुक-ए-जहाँगीरी

(च) प्रमुख आलोचना ग्रन्थ

१. योग-प्रवाह, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
२. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
३. संत-दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
४. प्रेमचन्द, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
५. काव्य की परख, डा० एस० पी० खत्री
६. कबीर का रहस्यवाद, डा० वर्मा
७. तसव्वुफ और सूफी मत, पं० चन्द्रबली पांडेय
८. लोक-जीवन और साहित्य, डा० रामविलास शर्मा
९. कबीर साहित्य की परख, श्रीपरशुराम चतुर्वेदी

(छ) काव्यशास्त्र

१. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. साहित्यादर्श, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३. रस छंदालंकार, डा० रसाल

(ज) विविध

१. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास
२. कवितावली, गो० तुलसीदास
३. भक्ति-रस-बोधिनी टीका, प्रियादास
४. भक्तनामावली, सम्पादक राधाकृष्ण दास
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सम्पादक ब्रजरत्न दास
६. भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक, रूपकला
७. भक्त कल्पद्रुम, सम्पादक कालीचरण चौरसिया
८. भक्तमाला, महाराज रघुराज सिह
९. कबीर ग्रन्थावली, डा० श्यामसुन्दर दास
१०. वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सम्पादक कृष्णशंकर शुक्ल
११. भक्त कल्पद्रुम, प्रताप सिंह

(झ) विशेषांक

१. कल्याण योगांक
२. कल्याण संतांक
३. कल्याण संतवाणी अंक
४. कल्याण भक्त चरितांक
५. प्रेम सन्देश सदाचारांक

(ञ) पत्र-पत्रिकाएँ

१. सम्मेलन-पत्रिका
२. कल्याण
३. हिन्दी अनुशीलन
४. आलोचना

अँग्रेजी

१. Religious Sects of Hindus—H. H. Wilson
२. Medieval Mysticism—K. M. Sen
३. Akbar, the Great Moughal—V. Smith
४. Jahangir's India—Moreland
५. The Religious Policy of Moughal Emperors—Shri Ram Sharma
६. History of Shahjahan—Dr. Banarsi Prasad.
७. A short History of Muslim Rule in India–Ishwari Prasad.
८. A Study of History—Arnold J. Toynbee. Part I.
९. An Introduction to the Study of Literature—Hudson (Ed. 1945)
१०. Principles of Literary Criticism—I. A. Richard.
११. The Development of English Biography—Sir Sidney Lee.
१२. A History of Indian Philosophy—Dr. S. N. Das Gupta (Vo. I, 1951)
१३. An Apology for Poetry—Sir Sidney Philliph.
१४. Idea of Universal Poetry—R. Hard.
१५. Encyclopedia Britanica—Vol. III (Ed. II).
१६. Experiments in Auto-biography—Vol. II (Ed. 1934)
१७. Midsummer Nights Dream—Shakespeare.

नामानुक्रमणी

अ

अकबर, १०, ११, १२, १३, १८, १९, १४९
अगरचन्द नाहटा, १६४
अग्रदास, ७, १०, २८, २९, ३०, ३१, ३५, ३८, ६०, ६४, ६५, ११४, १२१, १२२, १३६
अग्रदेव जी, ६४, १२५
अर्जुन, ४, ५७
अनंतदास, २१
अलाउद्दीन खिलजी, १०२
अयोध्या सिंह उपाध्याय, ४

आ

आई० एस० रिचर्ड, ४१
आर० हार्ड, १३०

इ

इब्राहिम लोदी, ११

ई

ईश्वरी प्रसाद, ७८, ८०

उ

उद्धव, ५७
उर्मिलादास, १९०

ए

एच० एच० विल्सन, ४, ८, २१, २३, २४, २७, ९२
एस० पी० खत्री, ११९, १२१

क

कंगालदास, ४९९
कपिल देव, ५५, ५६
कबीरदास, २, ४२, ५२, ६८, ६९, ७७, ७८, ८०, ८१, ९६, ११५, १५६
कालीचरण, २८, २९, १६४
कृष्णदास, ६२, ६५, ८१, १२५, १३२, १३६, १४५
किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ ३६
कील्हड़देव, १७०, ११४, १४४
कुंभनदास, १४०
के० एम० सेन०, ४, ८
केशवदास, ४६, ६०, १४६
केशव भट्ट, १५३

ख

खेमदास, २०, २६

ग

गंग, १३
गणेशदत्त मिश्र, ४५
गरूण जी, ५६
ग्रियर्सन, १०, २८, ३७, ७९
गोपालचन्द्र सिंह, ७३
गुलाबराय, ४०, ९१, ९३, १३०

च

चंद्रबली पाण्डेय, १५६
चंद्रहास्य, ५७, ६५, १६१
चतुर्भुजदास, १६३

छ

छीतस्वामी, १४०, १५२

ज

जगजीवन साहब, २०, ४१
जगन्नाथ प्रसाद, ७५
जनक जी, ५५, ५६
जनगोपाल. २०
जहाँगीर, ११, १३, १४, १६, १९
जानसान, ९०
जुझार सिंह, १५
ज्वाला प्रसाद मिश्र, १६१

त

तुलसीदास, २, ६, १०, १६, २५, ४६, ४७, ५२, ६३, ७१, ७६, ७७, ७९, ९६, ११५, ११७, १६१

द

दधीचि जी, ५९. १३२
दरिया साहब, ३, १३४
दीनदयाल गुप्त, ४, ६, ७, ८, १०, २३, ६२
द्रौपदी, ५७

ध

धना जी, ७०, ११६, १२६
धरमदास, ५१
ध्रुव जी, ५७
ध्रुवदास, २७, ५०

न

नन्ददास, ६६, ६७, १६३
नरिहरदास, ६५
नाभादास, १, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १५, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५४, ६०, ६१, ६२, ६४, ६८, ७१, ७२, ७४, ७५, ७६, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, १०७, १११, ११२, ११३, ११४, ११६, ११८, १२१, १२२, १२३, १२५, १२७, १३१, १३४, १३७, १४६, १४९, १५०, १५१, १५२, १५६, १६३, १६४
श्री नारदजी, ५५, ५८
नारायणदास, ३५, ३६, ३७, ३८, ४५, १७१
निकलसन, ८८, ९३

प

परशराम चतुर्वेदी, ४, ८, २१, १७७
परीक्षित, ५७
प्रताप सिंह, ११४
प्रह्लाद जी, ४, ५६
पृथ्वीराज, १०२
पार्षद, ५६
प्रियव्रत जी, ५७
प्रियादास, ५, ६, ७, ८, २१, २२, २४, २५, ३१, ३५, ३६, ३७, ४१, ५०, ५२, ६३, ६५, ६६, ६७, १२१, १६४, १७७
पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, ६७, ७८
पीपा जी, ६८, ६९, ७०, ७८, १६१, १६३

ब

बदरीनारायण श्रीवास्तव, ६६, १०७
बल्लभाचार्य, १३५
ब्रह्मा जी, ५५
बलि जी, ५५, ५६
बाबर, ११
बाबा फरीद, ६८
बाल्मीक, ५८, ६४, १०९
बाबूराम सक्सेना, १३९
बिहारी, ४७, १२३
बीरबल, १३
बोधदास, २०

भ

भगवान बुद्ध, ९४, ९८, ९९
भगवान विष्णु, ९४, ९७
भगीरथ मिश्र, १३३
भरत सिंह उपाध्याय, ९९, १००
भीमदेव, १०२
भीष्म जी, ५६
भीष्म पितामह, १०७
भीष्माचार्य, ५५

म

मनुज जी, ५५, ५६
महन्त हनुमान प्रसाद, १०६
महमूद गजनवी, १०२
मलूक दास, २४, २७, ४१, ५०, ५१, १४९
महावीर सिंह गहलोत, १, १०, २७, ५१, ७१, १७७
महावीर स्वामी, १००
माधवाचार्य स्वामी, ६३
मीर अब्दुल ताहिक जोकी, ८२
मीराबाई, ६१, ६६, ७६, ७७, ८१, १५३, १६३
मैत्रेय ऋषि, ५७
मोहम्मद अर्गरफ, ८२

य

युधिष्ठिर, ५७

र

रघुराज सिंह, ३१, ३७, ४७, ४८
रसखान, १६
रसाल, १, ४, ७, १०, २१, २२, २३, २६, ४८, १३०, १३३
राँका बाँका, ८१
राघवदास, ७६, ७८, १३६
राघवानंद, ७८
राजा अंग जी, ५७
राजा पृथ जी, ५१
राजा मुचुकुन्द जी, ५७
रामकुमार वर्मा, ४, ७, २१, २९, ३१, ३२, १०२, १५५, १७७
रामचन्द्र, ११५
रामचन्द्र शुक्ल, ४, ६, १० २१, २३, २५, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ४८, ७९, ८०, ८१,, १११, ११२५
रामत्वरूप, २०, २१
रामसेवक, २२
रामानन्द, ४७, ६५, ६८, ६९, ७०, ७७, ७८, ७९, १४५, १४६, १६३
रामानुज, ६०, ६३, ७१, ७८, १२९, १४५
रूपकला जी, ३१, ३२, ६८, ६९, १२४
रूपदास जी, ५५
रैदास, ६८, ६९, ७६, ७८, ८१, १६२

ल

लक्ष्मण जी, १२९
लक्ष्मी जी, १२९

व

विजयपाल, १०२
विदुर जी, ५६
विदुरानी, ५६
विभीषण जी, ५६
विवेकानंद, १५५
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ४, ७, २३, २६, ७९, ८७, १२९, १३३
विष्णु स्वामी, ६३

श

शंकर जी, ५५
शंकराचार्य, ६५, ७७
शाहजहाँ, १०, ११, १४, १५, १९
श्याम सुन्दरदास, २, ४, ६, १०, २३, २४, २९, ३०, ३३, ५०, ७४, १२३, १३०
शिव जी, ५७
शिवनारायण साहब, ४३
शिव सिंह सेंगर, ३, ५, २१, २९, ७४
श्रीराम शर्मा, १२
शेख शाह मोहम्मद, ८२

स

सधुरादास, १०, १२, १३, २१
सनक जी, ५५

सनत कुमार, ५५
सनातन, ५५
सनन्दन, ५५
सरला शुक्ल, १५६
सर सिडनी, १३०
सिद्धराज राजा, १०२
सुकदेव जी, ५५, ५६
सुदामा, ५६, ७१
सैयद गुलाम नबी रसलीन, ८२
सैयद निजामुद्दीन, ८२
सैयद बरकतुल्ला प्रेमी, ८२

ह

हनुमान जी, ४९, ५६, १२७
हरिश्चन्द्र, १६२
हितहरिवंश, १६२, १६३
हिम्मतदास, ६१
हुमायूं, ११
हेरालड निकलसन, ८७, ९०

क्ष

क्षितिमोहन सेन, ८, २१, २३, २४, २७, २९, ३०, ३१, ३२

त्र

त्रिलोकी नारायण दीक्षित, २, ३, ३९, ४०, ४१, ४३, ८७, १०९, १२३, १३३

ज्ञ

ज्ञानदेव, १६३